अन्तिम संस्कार

(सल्लेखना, रिष्ट एवं शवदाह विधि)

लेखक
पं. सनतकुमार विनोदकुमार जैन
रजवाँस, सागर (म. प्र.)

प्रकाशक
अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि-परिषद्

कृति : अन्तिम संस्कार
(सल्लेखना, रिष्ट एवं शवदाह विधि)

लेखक : पं. सनतकुमार विनोदकुमार जैन
रजवाँस, सागर (म.प्र.)
097545-79271, 09406518971

संस्करण : प्रथम, मई, 2012

आवृत्ति : 1100

मूल्य : 50/- (पुनः प्रकाशनार्थ)

सौजन्य : श्रीमती रुचि पाटनी धर्मपत्नि
श्री अमितकुमार पाटनी, मुम्बई

प्रकाशक : अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन शास्त्रि-परिषद्

प्राप्ति स्थान : पं. सनतकुमार विनोदकुमार जैन
रजवाँस, सागर (म.प्र.)

श्री देवेन्द्रकुमार अभिषेककुमार जैन
आदिनाथ भवन
52 आर. सी. ब्लाक जैन मंदिर के पास
दिलशाद गार्डन, दिल्ली-59
09560454892

श्री परवीनकुमार जैन
1/6019 कबूलनगर
शाहदरा, दिल्ली-32
092121-99030

मुद्रक : विकास आफसेट, भोपाल

अनुक्रमणिका

प्रथम - खण्ड

सल्लेखना पूर्वक समाधिमरण 9
मरण के दो भेद 12
अन्त समय संन्यास धारण की विधि 18
अन्त समय दान की विधि 20
अन्त समय व्रती बनें 20
निर्यापकाचार्य के
अभाव में सल्लेखना 21
सल्लेखना विधि 23
समाधि में मुनियों की आवश्यकता 23
साधुओं का कार्य विभाजन 24
निर्यापकाचार्य के द्वारा सम्बोधन 24
सल्लेखना आत्मघात नहीं है 26

द्वितीय - खण्ड

रिष्ट-समुच्चय 28
अरिष्ट और उनका स्वरूप 30
ज्योतिषीय लक्षण 36
छाया लक्षण 40
स्वप्न लक्षण 42

खण्ड - तृतीय

शवदाह विधि 48
प्रायोपगमन मरण करने वाले 49
इंगनिमरण करने वाले 49
शव क्षेपण से शुभाशुभ 49
भक्तप्रत्याख्यान मरण करने वाले 50
समाधि के बाद संघ का कर्तव्य
शवदाह का स्थान 51
क्षपक के मरण से संघ पर प्रभाव 52
शव दाह के समय भक्तियाँ 53
शवदाह विधि 53
निषिद्या से लौटने के
पश्चात् कर्त्तव्य 54
गृहस्थ श्रावक के
शवदाह की विधि 54
शव गाड़ने की विधि 54
देशान्तर में मरण 55
रजस्वला-मरण 55
गर्भिणी-मरण 56
दुर्मरण 56
शव यात्रा 58
दाह विधि 59
दुष्ट तिथि मरण प्रायश्चित 61
मृतकक्रिया कर्ता 62
अस्थिसंचय 63

श्मशान क्रिया के बाद 63
चरण चिह्न 63
वैधव्य-दीक्षा 64
वैधव्य अवस्था के कर्त्तव्य 64
सावधानियाँ 65
परिशिष्ट - 1
प्रश्न-उत्तर 66
परिशिष्ट - 2
शव विसर्जन से
सम्बन्धित चित्रावली 74
परिशिष्ट -3
1. समाधिमरण पाठ 76
2. समाधि भावना 78
3. समाधिमरण पाठ (बड़ा) 79
4. आराधना 89
5. इष्ट प्रार्थना 90
6. जब प्राण तन से निकलें 91
7. समाधि-भक्ति 92
8. समाधि भाषा 94
9. अमूल्य तत्त्व विचार 95
10. आत्म स्वरूप चिंतन 96

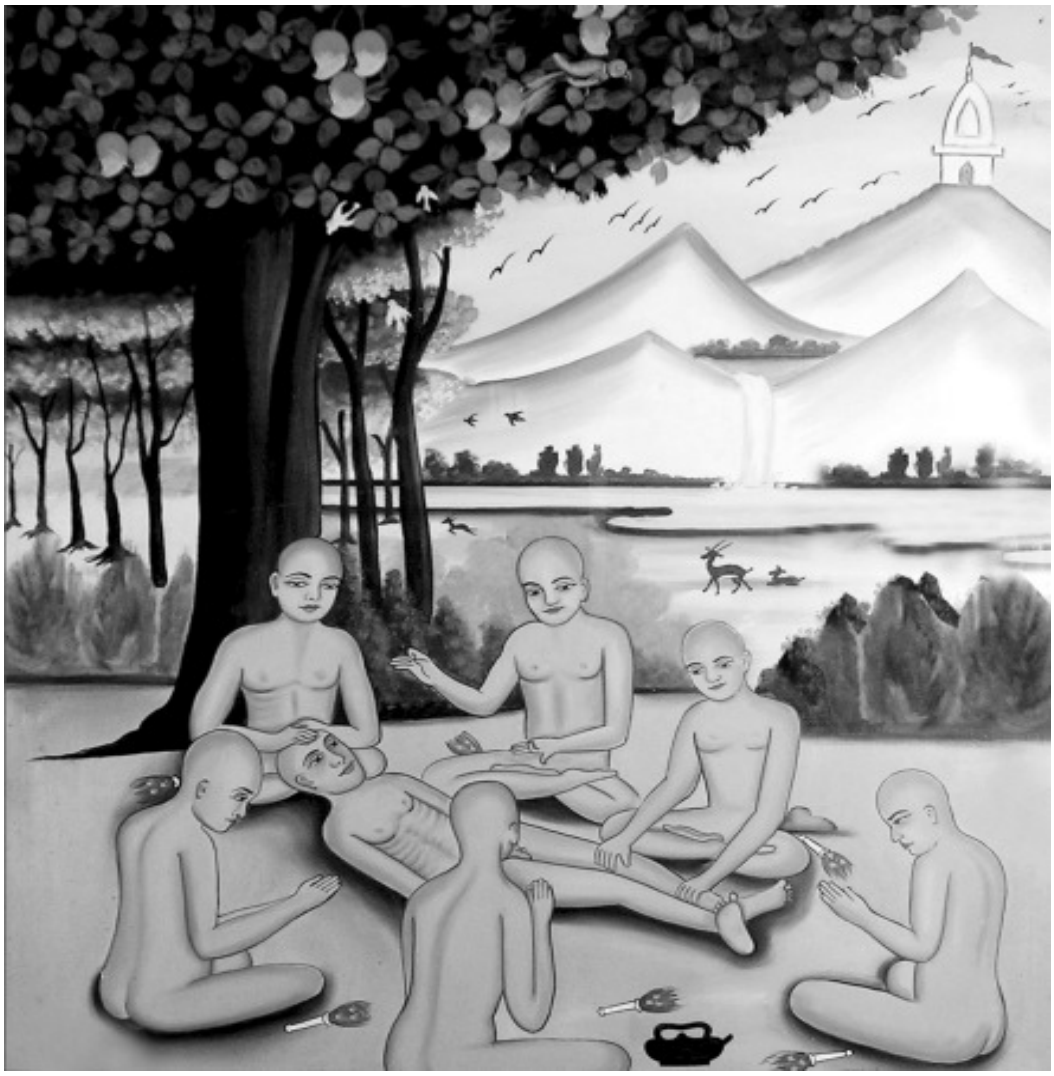

आद्य मिताक्षर

जैन संस्कृति में जन्म-मरण की विवेचना पर्याप्त मात्रा में की गयी है। मनुष्य जन्म दुर्लभ है परन्तु सल्लेखना पूर्वक समाधिमरण उससे (जन्म) भी दुर्लभ है। प्रायः यह अनुभव में आता है कि किसी व्रती, महाव्रती या गृहस्थ का मरण हो जाये तो उसका अन्तिम संस्कार किस विधि से किया जाय और इस युग में विशेषतौर से जहाँ एकल परिवार रहते हों, वहाँ तो नाई जैसा बता देता है वैसा ही कर देते हैं। ऐसी स्थिति में अन्तिम संस्कार पर विधि सम्मत संक्षेप में पुस्तक की नितान्त आवश्यकता थी। इस कृति को तीन खण्डों में विभाजित किया गया है, प्रथम खण्ड में सल्लेखना पूर्वक समाधि, द्वितीय खण्ड में रिष्ट समुच्चय और तृतीय खण्ड में शवदाह विधि तीनों खण्डों में विवेचित वस्तु विषय की विवेचना संक्षेप में प्रामाणिक रूप से प्रस्तुत की गयी है। इसमें आचार्य दुर्गदेव द्वारा रचित रिष्ट समुच्चय कृति से गाथाओं को उद्धृत करके विषय को प्रामाणिक बनाया गया है।

इस कृति के रिष्ट समुच्चय खण्ड को पढ़कर व्यक्ति रिष्ट-अरिष्टों की जानकारी कर आत्मकल्याण की ओर विशेष रूप से प्रवृत्त हो सकता है। यद्यपि अरिष्टों को जानकर भी उसका जितना आयुकर्म शेष है उतना तो उसको पूर्ण करना ही पड़ता है, परन्तु वह सावधान होकर समाधिमरण की तैयारी कर सकता है, जो मनुष्य का अन्तिम लक्ष्य है।

यह लघुकृति व्रती, महाव्रती एवं गृहस्थ तीनों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। ऐसी महत्त्वपूर्ण कृति के लेखक माननीय पं. सनतकुमार विनोदकुमारजी रजवाँस को विद्वज्जगत की ओर से बहुत-बहुत शुभकामना। आपने अभी तक जनोपयोगी अनेक कृतियाँ लिखकर समाज को दी हैं। अतः आप भातृद्वय जिनवाणी की इसी प्रकार से अहर्निश सेवा करते रहें। ऐसी मंगलभावना है।

अ.भा. दिग.जैन शास्त्रि-परिषद् इस कृति को प्रकाशित कर रही है। अतः परिषद् का यह कार्य प्रशंसनीय एवं सराहनीय है। एतदर्थ परिषद् के पदाधिकारियों एवं सदस्यों को साधुवाद।

- डॉ. शीतलचन्द्र जैन

पूर्व अध्यक्ष अ. भा. दिग. जैन विद्वत् परिषद्

अपनी बात

जन्म के बाद मरण संसार का शाश्वत सिद्धान्त है। जन्म से ही जीवन जीने के लिए संस्कार दिये जाते हैं। जब जीवन संस्कारवान हो जाता है, तब मरण भी संस्कारित होता है। यदि मरण सल्लेखना पूर्वक हो जाये तो व्यक्ति का अगला जन्म भी श्रेष्ठ होता है। अतः आचार्यों ने षोडश संस्कारों का उल्लेख किया है। श्रावक को प्राणान्त के उपरान्त शवदाह की प्रक्रिया विधि पूर्वक करना चाहिए, जिससे अशुभ कर्मास्रव से बचा जा सके। दाह संस्कार की अलग से कोई पुस्तक न होने के कारण लोग अन्य परम्पराओं के अनुसार शव दाह की क्रियायें करते हैं, जो हिंसात्मक एवं मिथ्यात्व की पोषक होती हैं। शवदाह में सभी धर्म जातियों के लोग सम्मलित होते हैं, अतः उनके संस्कारों का प्रभाव एवं जहाँ व्यक्ति रहता है उस समाज का प्रभाव भी पड़ता है। अतः शवदाह की प्रक्रिया दूषित हो गई और उचित मार्गदर्शन के अभाव में विकृतियाँ भी आ गई हैं। प्रत्येक प्रान्त, नगर, शहर, गाँव-गाँव की शवदाह विधि अलग-अलग प्रकार से देखने को मिलती है। इसका कोई शास्त्रीय आधार नहीं है, सभी क्षेत्रीय परम्परा से ही प्रभावित होती हैं। शवदाह एवं उठावने की विधि में एक रूपता नहीं है। अतः इसमें किसी भी परम्परा का उल्लेख नहीं किया है। यह सब सामाजिक व्यवस्था है। इसमें हिंसा एवं मिथ्यात्व का पोषण न हो यह ध्यान अवश्य रखना चाहिए।

श्री गजेन्द्रकुमार जैन पाटनी मुम्बई की प्रेरणा से इस विषय पर लेखन का विचार किया। आपने शवदाह विधि की पुस्तक की अत्यन्त आवश्यकता अनुभव की। हमने अनेक ग्रन्थों से अनुकूल विषयों का चयन कर सामग्री एकत्र की है। इसमें भगवती आराधना, मरणकण्डिका, विशुद्ध समाधि दीपक, रिष्ट समुच्चय (आ. दुर्गदेव कृत) त्रैवर्णाचार (श्री सोमसेन भट्टारक), सल्लेखना से समाधि साधना (आ. विरागसागर कृत) आदि ग्रन्थों से इस विषय की सामग्री संकलित की है।

आचार्य विरागसागर, आचार्य विशुद्धसागर, आचार्य विभवसागर, मुनि श्री सुधासागर, उपाध्याय श्री ज्ञानसागर, उपाध्याय श्री प्रज्ञासागर, आर्यिका

ज्ञानमति हस्तिनापुर, आर्यिका चन्दनामती, आर्यिका विज्ञानमति, आर्यिका दृढ़मति, आर्यिका अकम्पमति, डॉ. सरिता महाराज साहब, साध्वी रमेशकुमारी महाराज साहब आदि अनेक दिगम्बर-श्वेताम्बर साधु एवं भट्टारक श्री धवलकीर्ति अरिहंतगिरि तिरूमलै से विचार विमर्श किया बहुत कुछ जानकारियाँ प्राप्त हुईं, जिसे इस पुस्तक में संजोया गया है।

पं. रतनलाल जैन बैनाड़ा, आगरा, पं. गुलाबचंद जैन 'पुष्प', पं. नीरज जैन, सतना, डॉ. श्रेयांसकुमार जैन, बड़ौत, डॉ. शीतलचंद जैन, जयपुर, डॉ. वृषभप्रसाद जैन, लखनऊ, ब्र. जयकुमार 'निशान्त', डॉ. कपूरचन्द जैन, खतौली आदि अनेक विद्वानों ने मार्गदर्शन देकर इसे परिमार्जित किया है। हम सबका आभार मानते हैं, क्योंकि साधु और विद्वानों के माध्यम से ही आगम के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन संभव होता है। इन आवश्यक विषयों को संजोने में सभी का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है तभी हम यह कार्य कर सके हैं। इस पुस्तक को तीन खण्डों एवं तीन परिशिष्टों में विभाजित किया है –

प्रथम खण्ड – इसमें सल्लेखना, समाधि का स्वरूप, उद्देश्य एवं विधि का वर्णन किया गया है।

द्वितीय खण्ड – रिष्ट अर्थात् मृत्यु पूर्व होने वाले शरीर, वचन, मन, आदि के परिवर्तित, विकृत एवं दूषित होने पर उन्हें देखकर मृत्यु का समय ज्ञात करने की विधि का उल्लेख है। यह सभी विषय आचार्य दुर्गदेव कृत रिष्ट समुच्चय से लिया गया है।

तृतीय खण्ड – मृत्यु के पश्चात् शवयात्रा, शवदाह एवं शवदाह के उपरान्त की जाने वाली क्रियाओं का वर्णन किया है। इसमें साधु और श्रावक की शवदाह आदि की क्रिया विधि है।

परिशिष्ट – 1

आर्यिका विज्ञानमति माताजी से किशनगढ़ चातुर्मास के समय चर्चा हुई तब आपने 20 प्रश्न रखे, उनके उत्तर एवं कुछ अन्य आवश्यक प्रश्नों के उत्तर देकर विषयों का खुलासा करने का प्रयास किया है।

परिशिष्ट - 2

शवदाह की क्रिया विधि के कुछ चित्र दिये हैं, जिससे विषय को समझने में कुछ सुविधा हो सके। यह चित्र सल्लेखना से समाधि पुस्तक से लिये हैं।

परिशिष्ट - 3

सल्लेखना और समाधि करने वाले रुचिवान व्यक्तियों को भावों की स्थिरता के लिए समाधिमरण पाठ आदि पढ़ने के लिए प्रायः सभी समाधि पाठों को संकलित किया है।

इसके संयोजन, प्रकाशन में जिन महानुभावों का हमें सहयोग मिला उनका हम आभार मानते हैं। प्रकाशन में अर्थ सहयोग श्रीमति रुचि पाटनी धर्मपत्नि श्री अमितकुमार पाटनी, मुम्बई से प्राप्त हुआ। उन्होंने श्रुत की सेवा की है, हम उनके आभारी हैं। श्रावक जन इससे लाभ ले तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूँगा।

- पं. सनतकुमार विनोदकुमार जैन

रजवाँस, सागर (म.प्र.)

प्रथम - खण्ड

सल्लेखना पूर्वक समाधिमरण

जैन-दर्शन में जहाँ जीवन को संयमित, संतुलित बनाने का निर्देश है वहाँ मरण को भी सुव्यवस्थित करने की आज्ञा दी गई है। सुखमय भविष्य के लिये जीवन को जितना सुसंस्कारित करना आवश्यक है, उतना ही मरण को व्यवस्थित करना आवश्यक होता है। हमने अपने जीवन को अनंत-भव धारण करने पर भी सुखी नहीं बना पाया। तब हमने मरण को कैसे सफल बना पाया होगा। यदि एक बार मरण समाधिपूर्वक हो जावे तो हमारा जीवन सुखमय हो जावेगा। मरण को सुव्यवस्थित करने के लिये हमें जीवन भर मरने की तैयारी करनी पड़ेगी तब हम सफल समाधि-मरण कर सकेंगे।

आचार्यों ने बारह-व्रतों के पालन करने के उपरान्त मरण के समय प्रीति पूर्वक सल्लेखना व्रत ग्रहण करने को कहा है। तत्त्वार्थसूत्र में बारह व्रतों के स्वरूप, भावना और अतिचारों के साथ सल्लेखना व्रत का भी वर्णन किया है। सल्लेखना पूर्वक समाधिमरण करने के लिये जीवन भर बारह-व्रतों का पालन किया जाता है। अनंतों बार मरण करने पर भी मरण नहीं छूटा, यदि एक बार समाधिपूर्वक मरण हो जाये तो मरण छूट जायेगा। सल्लेखना में शरीर और कषाय को कृश करने का निर्देश किया है।

सल्लेखना -

सम्यक्काय कषाय लेखना सल्लेखना॥ (सर्वार्थसिद्धि 7/12)

अर्थात् - भली प्रकार से काय और कषाय का लेखन करना सल्लेखना है।

लिखेर्ण्यन्तस्य लेखना तनू करणमिति यावत्॥ (राज.वा. 7/22/3)

अर्थात् - लिख् धातु में णि प्रत्यय करने से लेखना शब्द बनता है उसका अर्थ तनु करण यानी कृश करना है।

शरीर की कृशता के साथ कषाय की कृशता अनिवार्य है। इसे संयम साधना की अंतिम क्रिया कहा जाता है।

उपसर्गे दुर्भिक्षे जरसि रुजायां च नि:प्रति कारे।
धर्माय तनु विमोचनमाहुः सल्लेखनामार्या॥

(रत्नकरण्ड श्रावकाचार 5/1)

अर्थात् – प्रतिकार रहित उपसर्ग, दुष्काल, बुढ़ापा और रोग के उपस्थित हो जाने पर धर्म के लिये शरीर के छोड़ने को गणधर देव सल्लेखना कहते हैं। सल्लेखना दो प्रकार से की जाती है।

1. काय सल्लेखना – आहार आदि का शरीर की स्थिति देखकर क्रम-क्रम से त्याग करके शरीर कृश करना काय सल्लेखना है।

2. कषाय सल्लेखना – संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होता हुआ जो कषायों को कृश किया जाता है, वह कषाय सल्लेखना कहलाती है।

समाधि –

मन में उत्पन्न होने वाले राग, द्वेष, मोह, भय, शोक आदि विकारी भावों को मन से दूर करके मन को अत्यन्त शान्त या समाधान रूप करके वीतराग भावों के साथ सहर्ष प्राण त्याग करने को समाधिमरण कहते हैं, अर्थात् भावों की विशुद्धि पूर्वक मरण करना समाधिमरण है।

मन को जितना विशुद्ध बनाया जावेगा समाधि उतनी श्रेष्ठ होगी। वचन और काय की क्रिया से अलग मन की विशुद्धि समाधि है।

वयणोच्चारण किरियं परिचत्तावीयराय भावेण।
जो झायदि अप्पाणं परम समाही हवे तस्स॥
संजम णियम तवेण दु धम्मज्झाणेण सुक्कझाणेण।
जो झायदि अप्पाणं परम समाही हवे तस्स॥

(नियमसार-122,123)

अर्थात् – वचनोच्चारण की क्रिया परित्याग कर वीतराग भाव से जो आत्मा को ध्याता है, उसे परम समाधि कहते हैं। संयम, नियम और तप से तथा धर्मध्यान और शुक्लध्यान से जो आत्मा को ध्याता है, वह परम समाधि है। ऐसे चिन्तन पूर्वक समाधिमरण करने से भवों का अन्त होता है। अज्ञानी शरीर

द्वारा जीव का त्याग करते हैं और ज्ञानी जीव द्वारा शरीर का त्याग करते हैं। अतः ज्ञानीजन का मरण ही सल्लेखना पूर्वक समाधिमरण होता है। शरीर अपवित्र और नाशवान है किन्तु वह तप का साधन होने से, भव समुद्र को पार करने को नौका के समान है। इसके माध्यम से तप धारण कर कर्मों का संवर और निर्जरा कर मोक्ष प्राप्त किया जाता है, यदि यह शरीर संयम तप आदि की विराधना में कारण बनने लगे तो धर्म के लिये शरीर का त्याग कर देना चाहिए, क्योंकि शरीर तो अनेक वार प्राप्त हुआ है और होगा भी किन्तु धर्म हमने अभी तक ग्रहण नहीं किया। यदि वह धर्म छूट गया तो कब अवसर आयेगा, कहा नहीं जा सकता है। शरीर का अन्त जान लेने पर शरीर से धर्म साधन में बाधा आने पर सल्लेखना ग्रहण करना चाहिए।

जीवन भर किये गये तप का फल निर्दोष, निरतिचार समाधि है। अंतिम समय में समाधि के समय जितनी विशुद्धि, दृढ़ता, आत्म-लीनता, राग-द्वेषनिवृत्ति, संसार स्वरूप का चिन्तन और आत्म स्वरूप में ही विचारों का केन्द्रित होना होगा, समाधि उतनी निर्दोष होगी।

मरण - मरण प्रकृति का शाश्वत नियम है, जन्म लेने वाले का मरण निश्चित है। मरण के स्वरूप की जानकारी होने पर मरण के समय होने वाली आकुलता से बचा जा सकता है। मोह के कारण जीव मरण के नाम से ही भयभीत रहता है अतः ज्ञानी जीव का मरण भय से रहित होता है।

स्वपरिणामोपात्तस्यायुष इन्द्रियाणां।
बलानां च कारणवशात् संक्षयो मरणं॥

(सर्वार्थसिद्धि 7/22)

अर्थात् - अपने परिणामों से प्राप्त हुई आयु का, इन्द्रियों का एवं मन वचन और काय इन तीन बलों का कारण विशेष मिलने पर नाश होना मरण है। दूसरे प्रकार से आयु कर्म का क्षय होना मरण कहलाता है।

आयुषः क्षयस्य मरण हेतुवात् ॥ श्री धवल 1/1/1/33

अर्थात् - आयु कर्म के क्षय को मरण का कारण माना है।

मरण के दो भेद :

1. तद्भव मरण : शरीर को धारण करने के लिये पूर्व शरीर का नष्ट होना तद्भव मरण कहलाता है।

2. नित्यमरण : प्रतिक्षण आयु का क्षीण होना नित्यमरण कहलाता है।

मरण के 17 भेद –

1. आवीचिमरण, 2. तद्भवमरण, 3. अवधिमरण, 4. आदिअन्तमरण, 5. बालमरण, 6. पण्डितमरण, 7. आसण्णमरण, 8. बालपण्डितमरण, 9. ससल्लमरण, 10. बलायमरण, 11. वसट्टमरण, 12. विप्पाणसमरण, 13. गिद्धपुट्ठमरण, 14. भक्तप्रत्याख्यानमरण, 15. प्रायोपगमनमरण, 16. इंगिणीमरण और 17. केवलीमरण।

1. आवीचि मरण : आयु का उदय प्रति समय होता है, अतः प्रत्येक अनंतर समय में मरण भी होता है। उसी प्रति समय होने वाले मरण को आवीचिमरण कहते हैं।

2. तद्भवमरण : भवान्तर प्राप्ति पूर्वक उसके अनन्तर पूर्ववर्ती भव का विनाश तद्भवमरण है।

3. अवधिमरण : जो वर्तमान में जैसा मरण प्राप्त करता है, यदि वैसा ही मरण होगा तो उसे अवधिमरण कहते हैं। उसके दो भेद हैं – देशावधिमरण और सर्वावधिमरण। वर्तमान में जो आयु जैसे प्रकृति, स्थिति, अनुभव और प्रदेशों को लेकर उदय में आ रही है, वैसी ही प्रकृति आदि को लिए हुए यदि पुनः आयुबंध करता है और उसी प्रकार भविष्य में उसका उदय होता है तो उसे सर्वावधिमरण कहते हैं और वर्तमान में जैसा आयु का उदय होता है, वैसा ही यदि एक देशबंध करता है, वह देशावधिमरण है।

4. आद्यन्तमरण : वर्तमान में जिस प्रकार के प्रकृति, स्थिति, अनुभव और प्रदेश द्वारा मरण को प्राप्त होता है, यदि एकदेश या सर्वदेश से उस प्रकार के मरण को प्राप्त नहीं होता तो आद्यन्तमरण है।

5. बालमरण : बाल के मरण को बालमरण कहते हैं। वह बाल

पाँच प्रकार का है – अव्यक्तबाल, व्यवहारबाल, दर्शनबाल, ज्ञानबाल, चारित्रबाल। अव्यक्त छोटे बच्चे को कहते हैं जो धर्म, अर्थ और काम को नहीं जानता और न जिसका शरीर ही उनका आचरण करने में समर्थ है, वह **अव्यक्तबाल** है। जो लोक, वेद और समय सम्बन्धी व्यवहारों को नहीं जानता अथवा इन विषयों में शिशु समान है, वह **व्यवहारबाल** है। अर्थ और तत्त्व के श्रद्धान से रहित सब मिथ्यादृष्टि **दर्शनबाल** हैं। वस्तु को यथार्थ रूप से ग्रहण करने वाले ज्ञान से जो हीन हैं वे **ज्ञान बाल** हैं। जो चारित्रपालन किये बिना जीते हैं वे **चारित्रबाल** हैं। इन बालों के मरण को **बालमरण** कहते हैं।

दर्शनबाल मरण दो प्रकार का है – एक इच्छा–पूर्वक, दूसरा अनिच्छा–पूर्वक। आग से, धुएँ से, शस्त्र से, विष से, जल से, पर्वत से गिरने से, श्वास के रुकने से, अतिशीत या अति गर्मी पड़ने से, रस्सी से, भूख से, प्यास से, जीभ उखाड़ने से और प्रकृति विरुद्ध आहार के सेवन से बालपुरुष मरण को प्राप्त होते हैं, यह इच्छापूर्वक मरण है अर्थात् ऐसे उपाय स्वयं करके वे मरते हैं।

6. पण्डितमरण : पण्डितमरण के चार भेद हैं, व्यवहार पण्डित, सम्यक्त्व पण्डित, ज्ञान पण्डित और चारित्र पण्डित । जो लोक, वेद और समय के व्यवहार में निपुण है, वह व्यवहार पण्डित है। जो अनेक शास्त्रों का ज्ञाता है, सेवा आदि बौद्धिक गुणों से युक्त है, वह व्यवहार पण्डित है। क्षायिक, क्षायोपशमिक अथवा औपशमिक सम्यग्दर्शन से जो युक्त है वह दर्शनपण्डित हैं जो मति आदि पाँच प्रकार के सम्यग्ज्ञान रूप से परिणत है, वह ज्ञान पण्डित है। जो सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात चारित्र में से किसी एक चारित्र का पालक है। वह चारित्र पण्डित है।

7. अवसन्नमरण : निर्वाण मार्ग पर प्रस्थान करने वाले संयमियों के संघ से जो हीन हो गया है, उसे निकाल दिया गया है, वह अवसन्न कहलाता है। उसके मरण को अवसन्नमरण कहते हैं।

8. बालपण्डितमरण : सम्यग्दृष्टि संयतासंयत के मरण को बाल पण्डितमरण कहते हैं क्योंकि यह बाल और पण्डित दोनों ही होता है। इसके स्थूल हिंसा आदि से विरति रूप चारित्र और दर्शन दोनों होते हैं।

9. सशल्लमरण : सशल्य मरण के दो भेद हैं - द्रव्यशल्य और भावशल्य। मिथ्यादर्शन, माया और निदान इन शल्यों का कारण जो कर्म है उस कर्म को द्रव्य शल्य कहते हैं। द्रव्य शल्य के साथ मरण पाँचों स्थावरों, असंज्ञियों और त्रसों का होता है। मिथ्यादर्शन माया निदान आदि भावशल्य हैं।

10. बलायमरण : जो विनय, वैयावृत्य आदि में आदरभाव नहीं रखता, प्रशस्त योग धारण में आलसी है, प्रमादी है, व्रत, समिति और गुप्तियों में अपनी शक्ति को छिपाता है, धर्म के चिंतन में निद्रा के वशीभूत जैसा रहता है, उपयोग न लगने से ध्यान, नमस्कार आदि से दूर भागता है, उसका मरण बलायमरण है।

11. वसट्टमरण : आर्त और रौद्रध्यानपूर्वक मरण को वसट्टमरण कहते हैं। उसके चार भेद हैं - इन्द्रियवसट्टमरण, वेदनावसट्टमरण, कषाय-वसट्टमरण और नोकषायवसट्टमरण।

12. विप्पाणसमरण, 13. गिद्धपुट्ठमरण : दुर्भिक्ष में, भयानक जंगल में, पूर्वशत्रु का भय होने पर, दुष्ट राजा का भय होने पर, चोर का भय होने पर, तिर्यञ्चकृत उपसर्ग होने पर जिसे अकेले सहन करना अशक्य है, या ब्रह्मचर्य व्रत का विनाश आदि दूषण चारित्र में होने पर संसार से विरक्त और पाप से डरने वाला साधु कर्मों का उदय उपस्थित जानकर उसे सहने में असमर्थ होने से उससे निकलने का उपाय न होने पर पापकर्म करने से डरता हुआ, साथ ही विराधनापूर्वक मरण से डरता हुआ विचारता है, कि इस काल में इस प्रकार के कारण उपस्थित होने पर कैसे कुशल रह सकती है, यदि उपसर्ग के भय से डरकर संयम से भ्रष्ट होता हूँ तो संयम से भी भ्रष्ट और दर्शन से भी भ्रष्ट होता हूँ और बिना संक्लेश के वेदना को सहन कर नहीं सकता। तब मैं रत्नत्रय के आराधना से डिग जाऊँगा, ऐसी निश्चित मति करके सम्यक्त्व और चारित्र में विशुद्ध, धैर्यशाली, ज्ञान से सहायता लेने वाला वह साधु किसी निदान के बिना अर्हन्त के पास में आलोचना प्रायश्चित लेकर शुभ लेश्या पूर्वक श्वासोच्छ्वास का निरोध करता है। उसे विप्पणास मरण कहते हैं और शस्त्रग्रहण से होने वाले मरण को गिद्धपुट्ठ मरण कहते हैं। ये दो मरण ऐसे हैं, जिनका निषेध भी नहीं है और अनुज्ञा भी नहीं है।

14. भक्तप्रत्याख्यानमरण : जो सेवन किया जाये वह भक्त है। उसकी 'पइण्णा'अर्थात् त्याग भत्तपइण्णा है। भोजन का त्याग शेष दोनों मरणों में भी संभव है, फिर भी रूढ़िवश भत्तपइण्णा शब्द मरण विशेष का ही बोधक होता है।

15. प्रायोपगमन मरण : प्रायोग्य शब्द से संसार का अन्त करने के योग्य संहनन और संस्थान कहे जाते हैं। उसके गमन अर्थात् प्राप्ति को प्रायोपगमन कहते हैं। उसके कारण होने वाले मरण को प्रायोपगमन मरण कहते हैं।

16. इंगिणीमरण : इंगिणी शब्द से आत्मा का इंगित अर्थात् संकेत कहा जाता है। अपने अभिप्राय के अनुसार रहकर होने वाला मरण इंगिणीमरण है।

17. केवलीमरण : अयोगकेवली के निर्वाण को केवली मरण कहते हैं।

जिसका चारित्र निरतिचार पलता है, निर्यापक भी सुलभ हैं और दुर्भिक्ष का भय नहीं है फिर भी यदि वह मरना चाहता है तो ऐसी सम्भावना होती है कि वह मुनिपद से विरक्त हो गया है।

अयोग्यावस्था में भी मुनिव्रत जिसके लिंग और दोनों अण्डकोष इन तीन स्थानों में ऐसा दोष है जिसे औषध आदि से दूर नहीं किया जा सकता, वह भी वसतिका में संस्तर पर आरूढ़ होने पर औत्सर्गिक लिंग को अवश्य ग्रहण करे।

जो प्रतिष्ठित धन सम्पन्न हैं या जिन्हें सबके सामने लज्जा लगती है या जिनका परिवार विधर्मी है, उन्हें सार्वजनिक स्थान में नग्न लिंग नहीं देना चाहिए। सवस्त्र लिंग ही उनके योग्य है।

अचेलता, हाथ से केश उखाड़ना, शरीर से ममत्व त्याग और प्रतिलेखन यह चार प्रकार का लिंग भेद औत्सर्गिक लिंग में होता है।

स्त्रियों के आगम में जो लिंग कहा है। वही लिंग उनके भक्त प्रत्याख्यान में भी होता है। अर्थात् तपस्विनी स्त्रियों के औत्सर्गिक लिंग नहीं होता है और शेष के पुरुषों की तरह जानना चाहिए। तपस्विनी स्त्रियाँ एक साड़ी मात्र

परिग्रह रखती है किन्तु उसमें भी ममत्व त्यागने से उपचार से निर्ग्रन्थता का व्यवहार होता है। किन्तु श्राविकाओं के उस प्रकार के ममत्व का त्याग न होने से उपचार से भी निर्ग्रन्थता का व्यवहार नहीं होता है।

मरण के छह भेद :

सम्यग्दर्शन, सम्यक् चारित्र, संयम आदि की अपेक्षा मरण के भेदों को अन्य प्रकार से भी कहा गया है।

पंडिद पंडिद मरणं पंडिदयं वाल पंडिदं चेव।

बाल मरणं चउत्थं पंच मयं वाल वालं च॥ 26॥

भगवती आराधना

अर्थात् – पण्डितपण्डित मरण, पण्डित मरण, बालपण्डित मरण, बालमरण और बालबालमरण ये मरण के पाँच भेद कहे हैं। इनमें प्रथम तीन मरण ही प्रशंसनीय हैं। प्रथम पण्डितपण्डित मरण से केवली भगवान निर्वाण प्राप्त करते हैं। उत्तम चारित्र धारी साधुओं के पण्डित मरण होता है। विरताविरत जीवों के तीसरा बालपण्डित मरण होता है। बालमरण अविरत सम्यग्दृष्टि के और बाल बाल मरण मिथ्यादृष्टि के होता है।

पण्डित मरण के भेद :

पण्डित मरण के प्रायोपगमन मरण, इंगनिमरण और भक्त प्रत्याख्यान या भक्त प्रतिज्ञामरण ये तीन भेद होते हैं।

आहारादिक के क्रम से त्याग करके शरीर को कृश करने की अपेक्षा तीनों मरण समान हैं। इनमें शरीर के प्रति उपेक्षा के भाव का ही अन्तर है।

1. प्रायोपगमन मरण :

जो मुनि न तो स्वयं अपनी सेवा करते हैं और न ही दूसरों से सेवा, वैयावृत्ति कराते हैं। तृणादि का संस्तर भी नहीं रखते, इस प्रकार स्व-पर के उपकार से रहित शरीर से निस्पृह होकर स्थिरता पूर्वक मन को विशुद्ध बनाकर मरण को प्राप्त करते हैं। उसे प्रायोपगमन मरण कहते हैं। भव का अन्त करने योग्य संस्थान और संहनन को प्रायोग्य कहते हैं। इनकी प्राप्ति होना प्रायोग्यगमन

है। अर्थात् विशिष्ट संहनन व विशिष्ट संस्थान वाले ही प्रायोपगमन ग्रहण करते हैं।

2. इंगनि मरण :

जिसमें सल्लेखनाधारी अपने शरीर की सेवा, परिचर्या स्वयं तो करता है, पर दूसरों से सेवा वैयावृत्ति नहीं कराता, उसे इंगनिमरण कहते हैं। इसमें क्षपक स्वयं उठेगा, स्वयं बैठेगा और स्वयं लेटेगा। इस तरह वह अपनी समस्त क्रियायें स्वयं करता है। स्व अभिप्राय को इंगित कहते हैं, अपने अभिप्राय के अनुसार स्थित होकर प्रवृत्ति करते हुए जो मरण होता है, वह इंगनिमरण कहलाता है।

3. भक्तप्रत्याख्यान मरण :

जिस संन्यास मरण में अपने और दूसरों के द्वारा किये गये उपकार वैयावृत्ति की अपेक्षा रहती है, उसे भक्त प्रत्याख्यान मरण कहते हैं। भक्त शब्द का अर्थ आहार है और प्रत्याख्यान का अर्थ त्याग है जिसमें क्रम से आहारादि का त्याग करते हुए मरण किया जाता है, उसे भक्तप्रत्याख्यान मरण कहते हैं। यद्यपि आहार त्याग उपरोक्त दोनों मरणों में भी होता है, तो भी इस लक्षण का प्रयोग रूढ़ि वश मरण विशेष में ही कहा गया है।

भक्त प्रत्याख्यान मरण के भेद

1. सविचार-भक्त-प्रत्याख्यान मरण :

नाना प्रकार के चारित्र में विहार करना विचार है। इस विचार के साथ जो वर्तता है, वह सविचार है। जो गृहस्थ अथवा मुनि उत्साह या बल युक्त है और जिसका मरण काल सहसा उपस्थित नहीं हुआ है। अर्थात् जिसका मरण दीर्घ काल के बाद होगा, ऐसे साधु के मरण को सविचार-भक्त-प्रत्याख्यान मरण कहते हैं। इसमें आचार्य पद त्याग, परगण गमन, सबसे क्षमा, आलोचना पूर्वक प्रायश्चित ग्रहण, विशेष भावनाओं का चिन्तन, क्रम पूर्वक आहार का त्याग आदिकार्य व्यवस्थित रहते हैं।

2. अविचार-भक्त-प्रत्याख्यान मरण :

जिनकी सामर्थ्य नहीं है, जिसका मरण काल सहसा उत्पन्न हुआ है, ऐसे पराक्रम रहित साधु के मरण को अविचार-भक्त-प्रत्याख्यान मरण कहते हैं। यह तीन प्रकार का है। (1) निरुद्ध (2) निरुद्धतर (3) परम निरुद्ध।

1. निरुद्ध : रोगों से पीड़ित होने के कारण जिनका जंघा बल क्षीण हो गया हो, जिससे पर गण में जाने से असमर्थ हो, वे मुनि निरुद्ध-विचार-भक्त-प्रत्याख्यान मरण करते हैं। इसके प्रकाश और अप्रकाश दो भेद हैं। क्षपक के मनोबल अर्थात् धैर्य, क्षेत्र, काल उनके वान्धव आदि का विचार करके अनुकूल कारणों के होने पर उस मरण को प्रकट किया जाता है वह प्रकाश है और प्रकट न करना अप्रकाश है।

2. निरुद्धतर : सर्प, अग्नि, व्याघ्र, भैंसा, हाथी, रीछ, शत्रु, चोर म्लेक्ष, मूर्छा, तीव्र शूल रोग आदि से तत्काल मरण का प्रसंग होने पर जब तक काय बल शेष रहता है और जब तक तीव्र वेदना से चित्त आकुलित नहीं होता और प्रतिक्षण आयु का क्षीण होना जानकर अपने गण के आचार्य के पास अपने पूर्व दोषों की आलोचना कर जो मरण करता है वह निरुद्धतर अविचार भक्तप्रत्याख्यान मरण है।

3. परम निरुद्ध : सर्प, अग्नि आदि कारणों से पीड़ित साधु के शरीर का बल और वचन का बल यदि क्षीण हो जाये तो उसे परमनिरुद्ध अविचार भक्त प्रत्याख्यान मरण कहते हैं।

अन्त समय संन्यास धारण की विधि :

अपने आयुष्य को शीघ्र क्षीण होता जान कर शीघ्र ही मन में अर्हंत व सिद्ध परमेष्ठी को धारण करके उनसे अपने दोषों की आलोचना करें तथा सर्व शल्य रहित ममत्व रहित होकर मोक्ष प्राप्ति के लिये दो प्रकार का संन्यास धारण करें।

अस्मिन् देशेऽवधौकाले यदि मे प्राणमोचनम् ।
तदास्तु जन्मपर्यन्तं प्रत्याख्यानं चतुर्विधम् ॥

जीविष्यामि क्वाचिद्वाहं पुण्येनो-पद्रवात्परात् ॥

करिष्येपारणं नूनं धर्म चारित्र सिद्धये ॥

मूलाचार प्रदीप 2819-2820

अर्थात् - पहला संन्यास इस प्रकार धारण करना चाहिए कि इस देश में इतने काल तक यदि मेरे प्राण निकल जायें तो मेरे जन्म पर्यन्त चारों प्रकार के आहार का त्याग है तथा दूसरे संन्यास को इस प्रकार धारण करना चाहिए कि यदि मैं अपने पुण्य से इस घोर उपद्रव से कदाचित बच जाऊँगा तो मैं धर्म और चारित्र की सिद्धि के लिये इतने काल के बाद पारणा करूँगा। इस प्रकार सहसा मरण काल आने पर अपने मन को विशुद्ध बनाता हुआ आहारादि का त्याग स्वयं भी कर सकता है, क्योंकि मरण काल में भावों की विशुद्धि का ही विशेष महत्त्व होता है। श्रावकों को मरण काल में महाव्रत ग्रहण कर लेना चाहिए, जिससे परिणाम विशुद्ध बनते हैं। इसके लिये भी क्रम से त्याग करना चाहिए ।

धरिऊण वत्थमेत्तं परिग्गहं छंडिऊण अवसेसं॥

सगिहे जिणालये वा तिविहा हारस्स वोसरणं॥

वसुनंदि श्रावकाचार 271

अर्थात् - वस्त्र मात्र परिग्रह को रखकर और अवशिष्ट समस्त परिग्रह को छोड़कर अपने ही घर में अथवा जिनालय में रहकर श्रावक, गुरु के पास में मन, वचन और काय से अपनी भली प्रकार आलोचना करता है और पानी के सिवाय शेष तीन प्रकार के आहार का त्याग करता है। श्रावक को अन्त समय में स्नेह, बैर और परिग्रह को छोड़कर, शुद्ध होता हुआ, प्रिय वचनों से अपने कुटुम्बियों और नौकरों से क्षमा कराते हुए आप भी सबको क्षमा करें। समस्त पापों की आलोचना करें और मरण पर्यन्त रहने वाले महाव्रतों को धारण करें। (रत्नकरण्डक श्रावकाचार) यदि चारित्रमोहनीय कर्म का उदय रहने से वह दीक्षा ग्रहण नहीं कर सकता तो मरण समय उपस्थित होने पर संस्तर श्रमण होकर क्रम से आहार आदि का त्याग करना चाहिए। (सावयपण्णति 378)

अन्त समय दान की विधि :

धनवान और धन रहित श्रावकों को भी ग्रन्थों में अन्त समय के लिए मार्ग प्रशस्त किया गया है।

तत्कर्तुं गुरुणा दत्त प्रायश्चितं तयोऽक्षमा।
धनिनो ये जिनागारे स्वयं सर्वत्र शुद्धये॥
दद्युर्धनं स्वशक्त्या ते परे दोषादि हानये।
प्रायश्चित्तं तु कुर्वन्तु तपांस्यनशनादिभिः॥

समाधिमरणोत्साह दीपक 35

अर्थात् – समाधिमरण के लिये उद्यत धनी गृहस्थ गुरु के द्वारा दिये गये प्रायश्चित तप को धारण करने में असमर्थ हो तो वे स्वयं शुद्धि के लिये जिनालय में धन का दान करें तथा दूसरे लोग अपनी शुद्धि के लिये शक्ति अनुसार अनशन, ऊनोदर आदि के द्वारा अपने पापों की शुद्धि करें। धन के प्रति आसक्ति कम करने के लिये धन दान करने का निर्देश दिया गया है।

अन्त समय व्रती बनें :

श्रावकों को अन्त समय में महाव्रत अवश्य धारण करना चाहिए, तभी श्रावक धर्म की सफलता मानी जाती है। शरीर के अन्तिम संस्कार के समय तीर्थंकरों, गणधर देवों, सामान्य केवली एवं महाव्रतियों के शरीर के अन्तिम संस्कार का ही वर्णन शास्त्रों में मिलता है अतः प्रतिफलित होता है कि श्रावकों को अन्त समय में महाव्रती अवश्य होना चाहिए। समाधिमरण करने वाला प्रीति, बैर, ममत्व भाव और परिग्रह को छोड़कर स्वच्छ हृदय होता हुआ मधुर वचनों से क्षमा करता और कराता है। शरीर को भार स्वरूप समझता है। किसी प्रकार का शोक नहीं करता है, भूख-प्यास की बाधा सहन होगी या नहीं यह सोच समाप्त हो जाती है और क्रम-क्रम से आहार का त्याग करता है। एक साथ पूर्ण आहार त्याग देने से क्षपक को आकुलता हो सकती है, अतः कुशल निर्यापकाचार्य के निर्देश में सल्लेखना ग्रहण करना चाहिए।

निर्यापकाचार्य के अभाव में सल्लेखना :

श्रावक को मुनि सान्निध्य में ही समाधि लेना चाहिए। मुनि की अनुपस्थिति में श्रावक क्षपक की मनोदशा देखकर आहार प्रत्याख्यान विधि, कुछ वस्त्र रखकर कुछ वस्त्रों का त्याग, एक देश परिग्रह का त्याग एवं धन, परिजन से ममत्व आदि विकल्पों का त्याग करा सकता है। मुनि संघ सान्निध्य के बिना श्रावक सम्पूर्ण परिग्रह त्याग न करावें क्योंकि श्रावकों को दीक्षा देने का अधिकार नहीं है। यदि श्रावक समर्थ, जागरुक एवं होश में हिताहित का निर्णय लेने में सक्षम हो तो आत्मबल की सजगता से वह स्वयं वस्त्र त्याग कर सकता है। इसमें दूरस्थ किसी साधु का निर्देश या सामीप्य अवश्य लेना चाहिए।

वसतिका – गायनशाला, नृत्य शाला, पुष्पवाटिका, मालाकार, गज, अश्वशाला, कुंभकार कोलिक, धोवी, डोम, नट और राजमार्ग के समीप का स्थान वसतिका के योग्य नहीं होता है।

जिसमें सुख पूर्वक प्रवेश हो, द्वार खुला न हो, अन्धकार न हो, दीवार मजबूत हो, कपाट सहित हो, गाँव के बाहर हो, जहाँ बच्चे, बूढ़े और चार प्रकार का संघ जा सकता हो, ऐसी वसतिका उद्यान, घर, गुफा या शून्य घर में होना चाहिए। ऐसी वसतिका न होने पर बांस के पत्तों से आच्छादित कर भी बनाई जा सकती है। (भगवती आराधना 632-638)

संस्तर – समाधि के लिए पृथ्वी, शिला, फलक अथवा तृणों का संस्तर बनाया जा सकता है।

पृथ्वीमय संस्तर – भूमि कठोर हो, ऊँची-नीची न हो, सम हो छिद्र रहित हो चींटी आदि जन्तु रहित हो, क्षपक के शरीर प्रमाण हो, गीली न हो मजबूत गुप्त एवं प्रकाश सहित हो।

शिलामय संस्तर – आग से, कूटने से अथवा घिसने से प्रासुक हो, टूटा-फूटा न हो, निश्चल हो एवं जीव रहित हो।

फलकमय संस्तर – सब ओर से भूमि से लगा हो, हल्का हो, अचल हो, शब्द न करता हो, एक रूप हो, जन्तु एवं छिद्र रहित हो, चिकना हो, टूटा-

फूटा न हो।

तृणमय संस्तर – गाँठ रहित तृणों से बना हो। तृणों के मध्य छिद्र न हो, टूटे तृण न हो, मृदु स्पर्श वाला हो, जन्तु रहित हो, सुख पूर्वक शुद्धि करने योग्य हो एवं कोमल हो।

संस्तर न बहुत छोटा, न बहुत बड़ा हो, सूर्योदय और सूर्यास्त के समय प्रतिलेखन द्वारा शुद्ध किया गया हो।

(भगवती आराधना 639-643)

निर्यापकाचार्य :

रोग की वेदना, तीव्र राग का उदय, विषयों की लिप्तता आदि के समय मन विचलित होने लगता है तब निर्यापकाचार्य अपने सम्बोधन से क्षपक के विचारों में स्थिरता प्रदान करते हैं। अतः श्रेष्ठ निर्यापकाचार्य होना आवश्यक है। निर्यापकाचार्य के आठ गुण कहे गये हैं।

आचारी सूरिराधारी व्यवहारी प्रकारकः ।
आयापाय दृगुत्पीड़ि सुखकार्यपरिस्रवः॥

मरणकण्डिका 433

अर्थात् – आचारवान, आधारवान, व्यवहारवान, प्रकारक (कर्ता), आयापाय दृग, सुखकारी, उत्पीड़क और अपरिस्रावी इन आठ गुणों से सहित निर्यापकाचार्य होना चाहिए क्योंकि बिना आचार्य के उपदेश के मन की शुद्धि, स्थिरता नहीं होती है।

सल्लेखना विधि कराने वाले निर्यापकाचार्य क्षपक की शक्ति को देखकर क्रम से आहार का त्याग कराते हैं। प्रथम कवलाहार (दाल, चावल रोटी आदि) का त्याग कराकर स्निग्ध पेय दूध आदि देते हैं। इसके बाद छाछ देकर इसका भी त्याग कराके मात्र गर्म जल देते हैं। शक्ति के अनुसार उपवास करते हुये पंचपरमेष्ठी का स्मरण कर शरीर का त्याग किया जाता है। इस पूरी प्रक्रिया में सल्लेखना कराने वाले आचार्य (निर्यापकाचार्य) की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है।

सल्लेखना विधि :

काल की अपेक्षा सल्लेखना उत्तम, मध्यम और जघन्य के भेद से तीन प्रकार की होती है। उत्कृष्ट बारह वर्ष, मध्यम काल के असंख्यात भेद हैं। जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। उत्कृष्ट बारह वर्ष की सल्लेखना में आहारादि के त्याग का क्रम निम्नानुसार है –

जोगेहिं विचित्तेहिं दुःखवेइ संवच्छराणि चत्तारि।
वियडीणिज्जूहित्ता चत्तारि पुणो वि सोसेदि॥
आयंविलणिव्वियडी हिं दोण्णि आय विलेण एक्कं च।
अद्धणादिविगट्ठेहिं अदो अद्धं विगट्ठेहिं॥

भगवती आराधना 258–259

अर्थात् – विचित्र प्रकार के काय क्लेशादि योग से चार वर्ष पूर्ण करें पश्चात् चार वर्ष रस रहित भोजन से शरीर कृश करें। आचाम्ल (अल्पाहार) तथा नीरस भोजन से दो वर्ष पूर्ण करें, पश्चात् अल्पाहार से एक वर्ष पूर्ण करें। इसके बाद छह महिने अनुत्कृष्ट तप करें और अंतिम छह महीने उत्कृष्ट तप कर बारह वर्ष पूर्ण करें।

समाधि में मुनियों की आवश्यकता :

समाधि में आचार्य को क्षपक के भावों की स्थिरता का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। यदि भावों में कोई विकार आ जावे तो समाधि विकृत हो जाती है। अतः निर्दोष और निर्विघ्न समाधि करने के लिये उत्कृष्ट अड़तालीस परिचारक मुनियों की आवश्यकता होती है। मध्यम रीति से परिचर्या करने वाले साधुओं की संख्या चार–चार कम करते जाना चाहिए। अत्यन्त निकृष्ट में भरत क्षेत्र, ऐरावत क्षेत्र में जघन्य रूप से दो मुनिराज निर्यापक परिचायक पद से ग्रहण करना चाहिए। अकेला एक साधु समाधि कराने में समर्थ नहीं होता है और निर्यापक के बिना क्षपक अशान्ति से मृत्यु को प्राप्त करता है अतः भयानक दुर्गति में जाता है। (वर्तमान में भरत, ऐरावत क्षेत्र में 44 मुनियों की आज्ञा है)

साधुओं का कार्य विभाजन :

निर्दोष उत्कृष्ट समाधि में अड़तालीस साधुओं का कार्य विभाजन निम्न प्रकार से किया जाता है। चार मुनि आहार लाते हैं। चार मुनि पेय पदार्थ लाते हैं। चार मुनि आहार पान का रक्षण करते हैं। चार मुनि क्षपक के मल-मूत्र को साफ करते हैं एवं सूर्योदय और सूर्यास्त के समय वसतिका, उपकरण और संस्तर आदि का शोधन करते हैं। चार मुनि वसतिका के द्वार का और चार मुनि समवसरण के द्वार का प्रयत्नपूर्वक रक्षण करते हैं। चार मुनि उपदेश मण्डप का रक्षण करते हैं। चार मुनि क्षपक के पास रात्रि जागरण करते हैं। चार मुनि निवास स्थान के बाह्य क्षेत्र की शुभाशुभ वार्ता का निरीक्षण करते हैं। चार मुनि श्रोताओं को उपदेश देते हैं। चार मुनि वाद-विवाद करने वालों के साथ वाद-विवाद करके सिद्धान्त का रक्षण करते हैं। चार मुनिराज धर्म कथा करने वालों का रक्षण करते हैं। अर्थात् बराबर व्यवस्था बनाये रखने को इधर-उधर घूमते रहते हैं। इस प्रकार उत्कृष्टतः अड़तालीस परिचारक मुनि संसार समुद्र से प्रयाण करने वाले क्षपक को रत्नत्रय पूर्वक समाधि में लगाये रहते हैं, किन्तु क्षपक को प्रत्याख्यान, प्रतिक्रमण, प्रायश्चित, उपदेश, तीन प्रकार के आहार का त्याग एवं प्रश्न आदि करने का कार्य निर्यापकाचार्य ही करते हैं।

निर्यापकाचार्य के द्वारा सम्बोधन :

क्षपक को रोगादि से मुक्ति के लिये जिनवचन ही औषधि हैं, ऐसा उपदेश देकर जिनधर्म में दृढ़ता कर के आराधनाओं की आराधना में लीनता प्रदान की जाती है। जो क्षपक सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तप की उत्कृष्ट आराधना करते हैं, वे उसी भव से सिद्धत्व प्राप्त करते हैं। मध्यम आराधना करने वाले धीर, वीर पुरुष तीन भव में कर्म रहित अवस्था अर्थात् मोक्ष प्राप्त करते हैं। जघन्य आराधना करने वाले सात जन्मों में सिद्ध अवस्था प्राप्त कर लेते हैं।

सल्लेखना मनुष्य भव की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है। हमें अपना जीवन सुखी बनाने के लिये सल्लेखना पूर्वक समाधिमरण करना चाहिए। आज तक हमने एक बार भी समाधि पूर्वक मरण नहीं किया है। मरणों के अनेक भेद

जानकर हमें संस्थान और संहनन को देखते हुये पण्डित मरण में सविचार भक्त प्रत्याख्यान मरण की भूमिका में पहुँचकर समाधिमरण करना चाहिए। समाधि की भावना आज से ही मन में बनाकर जहाँ समाधि हो वहाँ क्षपक के दर्शन कर अनुमोदना अवश्य करना चाहिए, क्योंकि अनुमोदना करने वाले की अवश्य ही समाधि होती है। अतः निरन्तर समाधि मरण की भावना करते रहना चाहिए।

दुक्खक्खओ कम्मक्खओ वोहिलाहो सुगइगमणं समाहिमरणं जिणगुण संपत्ति होउ मज्झं।

सल्लेखना आत्मघात नहीं है

आचार्य विशुद्धसागर महाराज

इस तथ्य के समझने के पहले आत्मघात की परिभाषा को समझें, आत्मघात है क्या? महान् आचार्य अमृतचंद स्वामी 'पुरुषार्थ सिद्धयुपाय' में लिखते हैं कि –

यो हि कषायाविष्टः कुम्भकजलधूमकेतु विषशस्त्रैः।
व्यपरोपयति प्राणन् तस्य स्यात्सत्यमात्मवधः॥ 178॥

जो पुरुष निश्चय कर कषाय से रंजित होता हुआ कुम्भक श्वांस रोकता है, जल, अग्नि, विष और शस्त्रों के द्वारा प्राणों को नष्ट करता है, यही वास्तव में आत्मघात है। ठीक इसके विपरीत सल्लेखना करने वाला न तो मरण चाहता है, न अग्नि में कूदता है, न ही जल में कूदकर प्राणों का त्याग करता है। वह तो मरणकाल जानकर शांत-भाव से युक्त होकर देह का विसर्जन करता है।

सल्लेखना एक शाश्वत् सत्य है, आत्मघात करना नहीं है। सल्लेखना में प्रमाद का अभाव रहता है। प्रमत्त-योग से प्राणों का घात करना हिंसा है। ऐसा कृत्य आत्मघात करना होता है, परन्तु सल्लेखना में न हिंसा है और न ही आत्मघात है। इस संदर्भ में महान् आचार्य अमृतचंद्र स्वामी ने 'पुरुषार्थसिद्धयुपाय' ग्रंथ की एक कारिका में स्पष्ट किया है कि –

मरणेऽवश्यंभाविनी कषाय सल्लेखनातनुकरण मात्रे ।
रागदिमंतरेण व्याप्रियमाणस्य नात्मघातोऽस्ति॥ 177॥

अर्थात् मृत्यु के अवश्यंभावी होने पर राग-द्वेष और मोह के बिना कषाय और शरीर को कृश करने के व्यापार में प्रवर्तमान पुरुष के सल्लेखना धारण करने में आत्मघात नहीं होता है। यहाँ पर यह शंका की जा सकती है कि जो पुरुष सल्लेखना धारण करता है, वह क्या आत्मघाती नहीं कहा जाता है? कारण कि वह प्राणों को शरीर से हटाने के लिए उद्यम करता है, मरण चाहता है। इसी शंका का समाधान उपरोक्त श्लोक में किया गया है कि सल्लेखना धारण करना किसी भी दृष्टि से आत्मघात नहीं है, क्योंकि वह मरण-समय उपस्थिति होने पर कषायों को कृश कर अपने परिणामों को विशुद्ध करता है, अपने सम्बन्धियों से क्षमा माँगता है और परिग्रहों और कुटुम्बियों से ममत्व को छोड़कर शुद्धात्म स्वरूप के चिंतन में मग्न हो जाता है। क्या आत्मघात करने वाला ऐसे निर्मल विशुद्ध परिणाम बना सकेगा ? वह तो विशेष राग-द्वेष भावों से आत्मघात करने की चेष्टा करता है, किसी कारण विशेष से मरने का उद्यम करता है, संक्लेश भावों से मरता है। सल्लेखना में इन सभी बातों का अभाव है।

सल्लेखना में किसी प्रकार का न तो राग-द्वेष है, न इष्टानिष्ट बुद्धि और न ही कोई शल्य ही है, प्रत्युत निरपेक्ष, वीतराग, विशुद्ध परिणाम हैं। इन तथ्यों से स्वतः ही स्पष्ट है कि सल्लेखना समाधिमरण है, आत्मघात करना नहीं है, बल्कि साम्य भावों से यह अंतिम विदाई है। यह अकाल मरण नहीं है, अपितु समता का जीवन जीना है। जब तक जिएँ, निर्मल भावों के साथ जिएँ। यह अंतिम यात्रा की पूर्व तैयारियाँ हैं। सफल जीवन-यात्रा के उद्देश्य को लेकर साधक अपनी साधना के फल के रूप में सल्लेखना स्वीकारता है। इसका फल परिनिर्वाण अर्थात् मोक्ष-सुख है। सल्लेखना-जैसे पावन अहिंसा-परिणामों को आत्महत्या का रूप देना अल्पज्ञता का प्रकटीकरण ही कहा जाएगा। आत्महत्या तो कषायजन्य परिणति का परिणाम है। क्षमाभावपूर्वक स्वभाव में लीन हो जाना ही सल्लेखना है। जैनदर्शन से भिन्न अन्य चिंतकों ने भी सल्लेखना को उत्तम और आवश्यक साधना के रूप में देखा है। किसी भी दर्शन के अंतरंग भावों का ज्ञान होने के बाद ही इस तरह के प्रश्न चिह्न लगाने की कोशिश नहीं करना चाहिए। यहाँ यह दृष्टव्य है कि जब राजाराममोहनराय

ने सती-प्रथा पर रोक लगाई थी, सल्लेखना उस काल में भी होती थी। उन्होंने इस मामले में किसी तरह विरोध नहीं किया। वह जानते थे कि इसमें सती-प्रथा जैसी प्रक्रिया नहीं है, जिस पर प्रश्न खड़ा किया जाए। इस संदर्भ में इसकी आवश्यकता है कि हम सत्य को समझकर अपनी बुद्धि और विवेक का विकास करें तथा भावना भाएँ कि अंतिम मरण हमारा सल्लेखनापूर्वक हो। किसी की भी धार्मिक - भावना को नष्ट करने की कुचेष्टा भारतीय संविधान के विपरीत है। धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में एक बनें, नेक बनें और अपनी संगठन-शक्ति को बढ़ाएँ। इसी भावना के साथ अंतिम लक्ष्य हमारा यह हो कि अंत समय प्रभु की आराधना और आत्म-साधना के साथ सल्लेखनापूर्वक मरण हो।

प्रश्न : चार मुनि आहार कैसे लाते हैं ?

चारों मुनि एक साथ आहार लेने नहीं जाते एक दिन में एक-एक मुनि ही आहार और पेय वस्तुएँ लेने जावेंगे। उस दिन उनका स्वयं का उपवास होगा, किन्तु वे आहार की मुद्रा में ही जाकर पड़गाहन आदि पूर्ण नवधा विधि यथावत् करावेंगे ओर जब श्रावक थाल परोस कर सामने रखेगा तब मौन छोड़कर वे मुनिराज उस थाल में से योग्य आहार और पेय क्षपक के लिए ले चलने हेतु कहेंगे। इस प्रकार याचना किए बिना आहार-जल आदि लाकर जो मुनिराज आहार एवं पेय पदार्थ की रक्षा में नियुक्त किए गए हैं, उनके संरक्षण में रखवा देंगे। आहार जल का संरक्षण करने वाले मुनिराज क्षपक के लिए समय देखकर उन्हीं श्रावकों से आहार दिलवायेंगे, स्वयं नहीं देंगे।

(संदर्भ : समाधि दीपक, पृ. 22 द्वितीय पट्टाचार्य शिवसागरजी महाराज जी के मुखारविन्द से सुना हुआ समाधान)

द्वितीय - खण्ड

रिष्ट-समुच्चय

शरीर के रिष्ट देखकर आचार्य सल्लेखना देते हैं। सल्लेखना ग्रहण करने वाले के ही रिष्ट देखे जाते हैं, इन्हें अन्य में घटित नहीं करना चाहिए। रिष्टों की जानकारी होने से सल्लेखना सुलभ होती है।

शरीर के वास्तविक स्वभाव और प्रकृति से बिलकुल विपरीत जो भी लक्षण प्रकट होते हैं, वे सब प्रत्यक्ष रिष्ट हैं लेकिन इन रिष्टों का दर्शन सर्व साधारण व्यक्तियों को नहीं होता है, बल्कि जिन व्यक्तियों की शुभ भावना है और जो सांसारिक मोह-माया से अलिप्तप्राय हैं, उन्हीं को रिष्टों का दर्शन प्रधानतः होता है। विशुद्ध आत्मा वाले व्यक्ति प्रत्यक्ष रिष्ट दर्शन द्वारा अपनी आयु का निश्चय कर आत्म कल्याण की ओर अग्रसर हो जाते हैं। प्रत्यक्ष रिष्ट दर्शन का विषय भी योग, ज्ञान और चारित्र से संबद्ध है। इन शक्तियों के रहने पर व्यक्ति वर्षों पहले से अपनी आयु का पता लगा सकता है।

जो भव्य पुरुष सल्लेखना करता हुआ अनशन-आहार को क्रमशः कम कर के पूर्ण त्याग द्वारा श्रेष्ठ मृत्यु को ग्रहण करना चाहता है, वह उचित ध्यान देने पर अरिष्टों का दिग्दर्शन करता हैं।[1]

रोग पाँच करोड़, अड़सठ लाख, निन्यानवे हजार पाँच सौ चौरासी प्रकार के होते हैं।[2]

जैनाचार्यों ने प्रधान रूप से दो प्रकार के रोग बतलाये हैं -

(1) पारमार्थिक (2) व्यावहारिक।

---

1. **इदि सल्लिहिद सरीरो भविओ जो अणसणेण वरमरणं ।**
   इच्छह सो इह भालइ इमाइं रिट्ठाई जंतेण ॥ 14 ॥
2. **रोयाणं कोडीओ हवंति पंचेव लक्ख अडसट्ठी।**
   नवनवइ सहस्साइं पंच सया तह य चुलसी अ ॥ 7 ॥

1. **पारमार्थिक** : ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय इन आठ कर्म रूप महाव्याधि को पारमार्थिक रोग कहते हैं।

2. **व्यावहारिक** : अग्नि, धातु आदि के विकृत होने को व्यावहारिक रोग कहा है। इसके 5,68,99,584 भेद है। रोगों की उत्पत्ति का अन्तरंग कारण असाता वेदनीय कर्म का उदय और बहिरंग कारण वात, पित्त एवं कफ आदि की विषमता को बतलाया है। इसी तरह रोग के शांत होने में मुख्य कारण, असाता वेदनीय कर्म की उदीरणा, साता वेदनीय का उदय एवं धर्माचरण आदि हैं। बाह्यकारण, रोग दूर करने वाली औषधि, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अनुकूलता है।

जीव अपने आयुकाल में सहस्रों अनुभूतियों को संचित करता है। ज्ञान गुण की पर्याय बदलती रहती है, पर उसका प्रभाव रह जाता है, क्योंकि ज्ञान गुण नित्य है, द्रव्यदृष्टि से उसका कभी विनाश नहीं होता है। अपने कार्यों के कारण जीव परिस्थिति वश नाना प्रकार के कार्यरूप पुद्गल परमाणुओं को ग्रहण करता है तथा उतने ही कर्म परमाणुओं की निर्जरा भी करता है।

कर्म ग्रहण और त्याग का प्रवाह अनादिकाल से चला आ रहा है। किसी एक शरीर में जीवकर्म भोग को विशेष कारण के बिना पूरा नहीं कर पाता है इसलिये जीव एक शरीर के बेकार हो जाने पर नये शरीर में जाता है। इस नवीन शरीर में भी वह पुराने संस्कारों का भण्डार साथ लाता है। प्राणियों का मरण भी विष खाने से, सर्प के काटने से शस्त्र-घात से, अग्नि में जल जाने या झुलस जाने से जल मे डूब जाने, ऊँचे स्थान से गिरने एवं नाना प्रकार के रोगों के कारण होता है।[1]

---

1. **अन्नं च जम्मपुव्वं दिट्ठं मरणं असेस जन्तूणं ।**
   विस-विसहर-सत्य-ग्गी-जल विगुवायेहि रोएहिं॥ 10॥

अरिष्ट और उनका स्वरूप :

जो संसार में रहते हुए परिषहों को जीतकर आराधना रूपी पताका सल्लेखना को ग्रहण करता है, वह रिष्ट दर्शन करता है।[1]

जिसकी आत्मा विशुद्ध है वह अपने चारों ओर के वातावरण से इष्टानिष्ट का संकेत प्राप्त करता है। इन वातावरण जन्य अरिष्टों का उपयोग सर्व साधारण व्यक्ति नहीं कर पाते हैं, लेकिन परिषह विजयी साधक-सल्लेखना धारण करने वाले अरिष्टों के द्वारा अपनी मृत्यु का निश्चय कर अच्छी तरह काय और कषायों को कृशकर आत्मा का कल्याण कर लेते हैं।

(1) शारीरिक रिष्ट - आचार्य श्री दुर्गदेव ने कहा है कि बिना किसी विशेष रोग के कोमल हाथ कठोर और काले हो जायँ तथा बिना रोग विशेष के अंगुलियाँ फट जाय तो शारीरिक रिष्ट समझना चाहिए[2] एवं सभी इन्द्रियों के अकारण विकृत हो जाने को भी रिष्ट बताया है।

जिसकी आँखें स्थिर हो जायँ - पुतलियाँ इधर-उधर चलें, शरीर कांतिहीन काष्ठवत् हो जाय और ललाट में पसीना आवे, वह केवल सात दिन जीवित रहता है।[3]

जो व्यक्ति स्थिर रहने पर भी कांपता रहे एकाएक मोटे से पतला और पतले से मोटा हो जाय एवं जो अपना हाथ सिर पर रखकर सोय, वह निश्चित रूप से एक मास जीवित रहता है।[4]

---

1. **आराहणापडायं जो गिण्हइ परिसहे य जिणिऊण ।**
   संसारम्मि अ ठिच्चा वोच्छे हं तस्स रिट्ठाइं ॥15 ॥
2. **जइ किण्हं करजुअलं सुकुमालं पिय हवेइ अंइकदिणं।**
   फुट्टंति, अंगुलिओ या रिट्ठं तस्य जाणेह ॥ 19 ॥
3. **थद्धं लोअणजुअलं विवषणतणू वि कट्ठ (य) समसरिसं ।**
   पस्सिज्जइ भालयलं सत्त दिणाइं उसो जियइ ॥ 20 ॥
4. **थगथगइ कम्महीणो थूलो दु किसो किसो हवइ थूलो।**
   सुबइ कयसीसहत्थो मासिक्कं सो फुडं जियइ ॥ 22 ॥

भोजन के समय जिस व्यक्ति को कडुवे, तीखे, कषायले, खट्टे, मीठे और खारे रसों का स्वाद न आवे उसकी तीस दिन की आयु रहती है।[1]

यदि अंगों में अनुभव शक्ति न हो, आँखे ऊपर की ओर झुकी हों, स्थिर हो, हाथ, पैर नहीं चलते हों तो उस व्यक्ति को मृत समझना चाहिए।[2]

यदि मुख से खून निकलता हो, मुख से ही तेजी से श्वास निकलती हो और खूब छटपटा रहा हो तो मृत्यु निकट समझनी चाहिए।[3]

निकट मृत्यु ज्ञान को अवगत करने के अनेक शारीरिक चिह्न होते हैं। किसी-किसी आचार्य ने चेष्टा का रुकना, स्मृति, धृति, मेधा आदि का नष्ट होना, अंगों में वीभत्स आकारों का प्रकट होना, जिह्वा का काला हो जाना, वाणी का अवरुद्ध हो जाना, नख और दाँतों का काला हो जाना, आँख का बैठ जाना, उत्सुकता, पराक्रम, तेज और कांति का क्षीण हो जाना एवं धातु और उपधातुओं का क्षीण हो जाना निकट मृत्यु के कारण बताये हैं।

बिना किसी कारण के यदि नख, ओठ और दाँत काले पड़ जायँ तो एक मास की आयु अवशिष्ठ समझनी चाहिए।[4]

यदि किसी व्यक्ति का मुख और जीभ काली पड़ जायँ, गर्दन बिना किसी कारण के झुक जाय तथा बार-बार सांस रुकने लगे तो उसका शीघ्र मरण समझना चाहिए।[5]

---

1. **कटुतिक्तं च कषायमग्लं मधुरं तयैव लवणं च ।**
   भुंजन्न खलु जानाति त्रिन्शद्दिनानि च तस्यायुः ॥ 24 ॥
2. **न हु जाणइ णियअंगं उडढादिट्ठी ज्झडप्पपरिहीणा ।**
   कर-चरणचल्लणासो गयजीवं तं विआणेह ॥ 25 ॥
3. **वयणेण पडइ रूहिरं वयणेण अ निग्गमेइ अइसासो ।**
   विस्सामेण विहीणो जाणइ मच्चुं लहुं तस्य ॥ 26 ॥
4. **अहर-नहा तह दसणा करूणा जइ हुंति कारणबिहीणा ।**
   मासाब्भंतर आउं निद्दिट्ठं तस्य सत्थम्मि ॥ 27 ॥
5. **मुह-जीहं चिअ कि ण्हं गीवा लहु पडइ कारणं गात्थि।**
   रूभइ हिअइ सासो लहु मच्चू तस्य जाणेह ॥ 28 ॥

उष्ण वस्तु शीत प्रतीत हो और शीत वस्तु उष्ण प्रतीत हो, कोमल वस्तु कठोर और कठोर वस्तु कोमल प्रतीत हो, सुगन्धित वस्तु दुर्गन्ध युक्त और दुर्गन्धित वस्तु सुगन्ध युक्त प्रतीत हो एवं कृष्ण वस्तु शुक्ल और शुक्ल वस्तु कृष्ण प्रतिभासित हो तो उस व्यक्ति का निकट मरण जानना चाहिए।

मृत्यु होने के पूर्व शरीर की स्थिति कायम रखने वाले परमाणुओं में इस प्रकार का विपर्यास आ जाता है जिससे उसकी इन्द्रिय शक्ति क्षीण हो जाती है और शारीरिक संघठित परमाणु विघटित होने की ओर अग्रसर हो जाते हैं। यह विघटन की प्रक्रिया जब तक नहीं होती है, तभी तक जीवन शक्ति वर्तमान रहती है। आधुनिक वैज्ञानिक भी इस बात को स्वीकार करते हैं कि मृत्यु होने के पूर्व से ही जीवन शक्ति सम्पन्न रखने वाले परमाणु अपनी असली स्थिति को छोड़ना शुरु कर देते हैं। धीरे-घीरे जीवन शक्ति के ह्रास होने पर परमाणुओं का समुदाय विकीर्ण हो जाता है और चेतन आत्मा अन्यत्र चला जाता है।

जिसकी जीभ की नोंक (अग्रभाग) बिल्कुल काली हो जाय और ललाट की बड़ी रेखाएँ मिट जाँय वह एक मास जीवित रहता है।[1]

जिसके हाथ और पैरों पर जल रखने से सूख जाय वह निस्सन्देह तीन दिन जीवित रहता है।[2]

वात के प्रकोप से जब शरीर में सुई चुभाने जैसी भयंकर पीड़ा हो, मर्मस्थानों में भी अत्यन्त पीड़ा हो, भयंकर और दुष्ट बिच्छू से कटे हुए मनुष्य के समान अत्यधिक वेदना से प्रतिक्षण व्याकुलित हो तो समझना चाहिए कि वह तीन दिन तक जीवित रहेगा।

मरण के पहले तीन दिन से ही शरीर में परमाणुओं की रासायनिक विश्लेषण क्रिया आरम्भ हो जाती है, जिससे शरीर को स्थिर रखने वाले वायु

---

1. **जीहग्गे अइकसिणं अण्णं तं होइ जस्स गुरूतिलयं।**
   मासिक्कं तस्साऊ निद्दिट्ठं सत्थइत्तेहिं॥ 30॥
2. **कर-चरणेषु अ तोयं दित्रं परिसुसइ जस्स निब्भतं ।**
   सो जीवइ दिअहतयं इइ कहिअं पुव्वसूरीहिं॥ 31॥

और कफ दोनों असमावस्था को प्राप्त हो जाते हैं। तीनों दोषों के विकृत होने पर भी वायु और कफ में पहले विकार आता है और इन दोनों की विकृति इतने असमान रूप से होती है जिससे पित्त दोष इन्हीं के अन्तर्गत आ जाता है फलतः तीन दिन पहले से शरीर-स्थिति को सम्पन्न करने वाले घटक रूप परमाणु वायु की तीव्रता से आचार्य प्रतिपादित चिह्नों को प्रकट कर देते हैं।

यदि नेत्रों के संचालन के साथ पुतलियाँ नहीं घूमती हों तो निस्सन्देह दो दिन के भीतर मरण होता है।[1]

ठंडे जल से सिंचन करने पर भी जिसे रोमांच नहीं होता हो और जो अपने शरीर की सर्व क्रियाओं का अनुभव नहीं करता हो, वह दो दिन के भीतर मृत्यु को प्राप्त होता है।

जो अघन आकाश को घनीभूत कठिन देखता है और घनीभूत पृथ्वी के अघन रूप में दर्शन करता है अमूर्तिक आकाश मूर्त्तिमान रूप में दिखलाई पड़ता है, तेजमान अग्नि तेज रहित दिखलाई पड़ती है, स्थिर वस्तु को चंचल और चंचल को स्थिर रूप में देखता है, निरभ्र आकाश को मेघाच्छादित देखता है उसका शीघ्र मरण होता है। जिस व्यक्ति की काली पुतलियाँ बिना किसी रोग के सहसा सफेद हो जाये और जो नेत्र संचालन करने पर नेत्रों के भीतर रहने वाले प्रकाशमान तारा का दर्शन न करे तथा जिसकी भीतरी आँखों का आकार मैला और सफेद दिखलाई पड़े उसकी मृत्यु निकट समझनी चाहिए।

जिस व्यक्ति का धैर्य और स्मृति नष्ट हो जाये, जो चलने से असमर्थ हो जाये, जिसे अत्यन्त नींद आती हो अथवा नींद ही नहीं आती हो तो वह चार मास जीवित रहता है।[2]

स्मृतियाँ दो प्रकार की होती हैं - एक तंतुगत स्मृति - अचेतन और दूसरी चेतन स्मृति। तंतुगत स्मृति उन आच्छादित अन्तः संस्कारों की पुनरूद्भावना

---

1. **दिट्ठीए चप्पियाए ताराविंबं ण जस्स भमडेइ।**
   दिणजुअमज्झे मरणं णिद्दिट्ठ तस्य निब्भतं॥ 35॥
2. **घिदिणासो सदिणासो गमणविणासो हवेइ इह जस्य।**
   अइणिद णिद्दणासो मासचउक्क उसो जियइ॥ 36॥॥

है जो संवेदन सूत्र ग्रंथियों से संचित रहते हैं – अन्तः संस्कारों की धारणा के अनुसार जो शारीरिक व्यापार होते हैं, उनका भान इस स्मृति से नहीं होता। चेतन स्मृति अन्तः संस्कारों का प्रतिबिम्ब पड़ने से उत्पन्न होती हैं, इससे प्रथम संस्कारों की धारणाएँ रहती हैं, फिर वे ज्ञानपूर्वक उपस्थित हो जाती हैं, यह एक अन्तःप्रवृत्ति है, जिसका प्राणी समय–समय पर उपयोग करता रहता है। चेतन स्मृति मनुष्यों की मृत्यु के चार माह पहले से नष्ट हो जाती है, इसका प्रधान कारण यह है कि जीवन शक्ति के न्यून हो जाने पर उन्नत मनोव्यापार रुक जाते हैं। जीवन शक्ति जितनी अधिक उन्नत और विकसित परिणाम में रहेगी, मनुष्य के मनोव्यापार उतने ही अधिक उन्नत कोटि के होंगे मनुष्य के मस्तिष्क व्यापार और शारीरिक व्यापार जब संतुलित अवस्था में नहीं रहते हैं, उस समय उसकी जीवन शक्ति घट जाती है मृत्यु चिह्न प्रधान रूप से शारीरिक और मस्तिष्क सम्बन्धी वेगों की असमता के द्योतक ही हैं। धृति और स्मृति चेतन अवस्था से जब अचेतन अवस्था को प्राप्त होती हैं, उस समय व्यक्ति के भौतिक शरीर में इस प्रकार की रासायनिक क्रिया होती है जिससे उसकी जीवन शक्ति का ह्रास होने लगता है और वह धीरे–धीरे मृत्यु के निकट पहुँच जाता है। इस अवस्था में व्यक्ति के अन्तःकरण से प्रीति, घृणा, प्रवृत्ति, आदि मनोवेगों की परम्परा विच्छिन्न होने लगती है और उस के संवेदन में भी न्यूनता आने लगती है।

धृति और स्मृति का नष्ट होना चार माह पूर्व से ही मृत्यु सूचक बतलाया है। ये दोनों प्रवृत्तियाँ चेतन ज्ञान से सम्बद्ध रहती है, अतः इनका अभाव स्पष्ट रूप से चेतना–जीवन शक्ति के अभाव का द्योतक है।

यदि कोई अपनी जिव्हा न देख सके तो एक दिन, नाक न देख सकने पर तीन दिन और भौंह के मध्य भाग को न देख सकने पर नौ दिन जीवित रहता है।[1]

कान में समुद्र घोष सदृश आवाज आने पर सात दिन, नाक में विकृति

---

1. **ण हु पिच्छइ णिपजीहा एयदिणं होइ तस्य इह आऊ।**
   नासया त्रीन् दिवसात्रव दिवसान् भ्रूमध्येन॥ 37॥

होने पर पाँच या चार दिन, आँखों की ज्योति में विकार होने पर तीन दिन और रसना इन्द्रिय के विकृत होने पर एक दिन की आयु समझनी चाहिए।

शरीर विज्ञान वेत्ताओं ने इन्द्रियों की परीक्षा से आयु का निश्चय किया है। उनका मत है कि शारीरिक लक्षणों में सबसे पहले स्पर्शन इन्द्रिय जन्य मृत्यु चिह्न प्रकट होते हैं। स्पर्शन इन्द्रिय में अनुभव शून्यता के होने पर तीन महीने के भीतर मृत्यु होती है। अन्य इन्द्रियों में मृत्यु के कुछ ही दिन पूर्व शिथिलता आती है।

कानों के भीतर होने वाली ध्वनि भी न सुनने पर सात दिन और आँखों के तारा–आँखों के भीतर रहने वाले मसूर के समान प्रकाश को, न देख सकने पर पाँच दिन की आयु अवशेष रहती है।[1]

यदि हाथ, हथेली को मोड़ने पर इस प्रकार न सट सके, जिससे चुल्लू बन जाये और एक बार ऐसा करने पर अलग करने में देर लगे तो सात दिन की आयु समझनी चाहिए।[2]

जिस व्यक्ति को अपने पैर नहीं दिखें वह तीन वर्ष, जांघ नहीं दिखे तो दो वर्ष, जानु–घुटना न दिखे तो एक वर्ष, उरु–वक्षस्थल नहीं दिखलाई पड़े तो दश महीने, कटि प्रदेश नहीं दिख पड़े तो सात महीने, कुक्षि–कोख नहीं दिखलाई पड़े तो चार महीने, गर्दन नहीं दिख पड़े तो एक महीने, हाथ नहीं दिखलाई पड़े तो पन्द्रह दिन, बाहु–भुजा न दिखलाई पड़े तो आठ दिन, कंधा नहीं दिखलाई पड़े तो तीन दिन एवं नख और दाँतों का विवृत हो जाने से दस दिन की आयु शेष समझनी चाहिए। मृत्यु के कई महीने पहले से ही नाक, कान, जीभ और मुँह विकृत हो जाते हैं। इस अवस्था में वे कुछ दिन पहले से ही मृत्यु के सूचक बन जाते हैं।

---

1. **करणाघोसे सत्त यलोयगणताराअहं सणे पंच।**
   दिअहाइँ हवइ आऊ इस मणिअं सत्थत्तेहिं॥ 38॥
2. **बद्धं चिअ कर जुअलं न हु लग्गइ संपुडेण निब्भंतं।**
   बिहडेइ अइसएणं सत्त दिणाइं उ सो जियइ॥ 39॥

मनुष्य की दृष्टि में भ्राँति होना, आँखों में अंधेरा आना, आँखों का स्फुरण और आँसुओं के रूप में बहना, ललाट पर पसीना आना, धारक रक्तवाहिनी और रसवाहिनी नाड़ियों में स्थिरता, उत्पन्न होना, हाथ और पैरों पर अत्यधिक रूप से रोमों का उत्पन्न होना, मल की अधिक प्रवृत्ति होना, 107 डिग्री से ऊपर ज्वर का होना, श्वास का रुक जाना एवं ललाट का अत्यधिक गर्म और अन्य शरीरावयवों का शीतल होना; आदि चिह्न शीघ्र ही मृत्यु के सूचक बताए गए हैं।

ज्योतिषीय लक्षण :

जो कोई संसार में एक चन्द्रमा को नाना रूपों में तथा छिद्रों से परिपूर्ण देखता है, उसकी आयु निश्चित रूप से एक वर्ष की होती है।[1]

जो व्यक्ति अर्द्ध चन्द्रमा को मण्डलाकार देखता हो और जिसको ध्रुवतारा, अरुंधती तारा, आकाश, चन्द्रकिरण एवं दिन में धूप नहीं दिखलाई पड़े, तो वह एक वर्ष जीवित रहता है।

जो व्यक्ति सूर्य बिम्ब को छिद्रपूर्ण और अनेक रूपों में देखता है, वह एक वर्ष जीवित रहता है।[2]

सूर्य और चन्द्र का प्रभाव पड़ता ही है पर इनके रूप दर्शन और आकार दर्शन का भी प्रभाव पड़ता है। समस्त प्राणी प्रतिदिन इनके अवलोकन से अपने कर्त्तव्य मार्ग को ग्रहण कर सकते हैं, क्योंकि प्रत्येक प्राणी के शरीर की बनावट सौर जगत् के समान है तथा उसके संचालन के नियम भी सौर-जगत् के समान हैं। सौर-जगत् के नियमों से मिलते हैं। इसलिए व्यक्ति इनके दर्शन से अपने शरीर की स्थिति के सम्बन्ध में पूर्णज्ञान प्राप्त कर सकता है। शरीर की आभ्यन्तरिक रचना के विकृत होने पर बाह्य सौर जगत् की रचना भी विकृत पड़ती है। वर्तमान में योग शक्ति के न होने के कारण साधारण व्यक्ति

---

1. **एक्को वि जए चंदो बहुविहरूवेहिं जोणियच्छेइ ।**
   छिहोह तस्स आऊ इगवरिसं होइ निब्भन्तं ॥ 45 ॥
2. **तह सूरस्स यह बिंबं णिएइ छिद्दं अणेयरूवेहिं।**
   तस्स भणिज्जइ आऊ वरिसेगं सत्थइत्तेहिं ॥ 46 ॥

आन्तरिक सौर-जगत् की रचना की विकृति को नहीं देख पाते हैं इसलिए उन्हें बाह्य सौर-जगत् को विकार युक्त देखने पर आन्तरिक सौर जगत् की विकृति का अनुमान कर लेना चाहिए।

आन्तरिक सौर-जगत् और बाह्य सौर-जगत् के साथ समानता है। इसीलिए तारा, नक्षत्र, सूर्य और चन्द्र आदि के विकृत दर्शन को मृत्यु का सूचक कहा है।

जो व्यक्ति दीपक के प्रकाश की लौ को अनेक रूप में देखता है, वह तुरन्त मर जाता है।[1]

जो व्यक्ति अत्यधिक उन्नत वृक्ष-ताड़ वृक्ष को अग्नि या शीत से जलते हुए देखे तो उसकी मृत्यु निकट समय में होती है।[2]

जो व्यक्ति वृक्षों की बड़ी सघन पंक्ति को दूर से छिन्न-भिन्न और विलग देखे, जिसके पैर का चिह्न कीचड़ या धूल में खण्डित दिखलाई पड़े, जिसका कफ जल में फेंकने पर डूब जाये, जिसके मुख में तर्जनी, मध्यमा और अनामिका ये तीनों अंगुलियाँ साथ जोड़कर न समाय, स्नान करने पर जिसके मस्तक से धूम शिखा निकले और जिसके मस्तक पर खाली मुँह वाला पक्षी बैठे वह शीघ्र मरण को प्राप्त होता है। एक स्थान पर पैरों की अंगुलियों के नखों की आभा का नील वर्ण मय होना तथा तद्वत चन्द्रबिम्ब का आवरण दर्शन करना अरिष्ट सूचक बताया है।

यदि सात दिनों तक रवि, शशि एवं ताराओं के बिम्बों को नाचता हुआ देखे तो निस्संदेह उसका जीवन केवल तीन मास का होता है।[3]

---

1. **दीवयसिहा हु एगा अणेगरूवा हु जो णियच्छइ।**
   तस्स लहु होइ मरणं किं बहुणा इह पलावेण॥ 48॥
2. **उत्तमदुमं हि पिच्छइ हिमदड्ढमिवाणलेण वा नूणं ।**
   लहु होइ तस्स मरणं पयंपियं मुणिवरिंदेहिं ॥ 49॥
3. **सत्त दिणाइँ रिण्यच्छइ रवि-ससि-ताराण जो सुहं बिंबं।**
   भममाणं तस्साऊ होइ तिमासं न सन्देहः॥ 50॥

जो तीन दिन तक सच्छिद्र चन्द्रमा को आकाश मण्डल में देखता है तथा रवि मण्डल का रात्रि में दर्शन करता है और जिसे उल्का एवं इन्द्र धनुष का रात्रि में दर्शन होता है वह तीन महीने संसार में जीवित रहता है। यदि आकाश से टूटते हुए तारे रात में दिखलाई पड़ें तथा रात को आकाश में एक विचित्र कम्पन मालूम पड़े तो तीन महीने की अवशिष्ट आयु समझनी चाहिए। रात को अकारण चन्द्रमण्डल म्लान और दिन को अकारण ही रवि मण्डल म्लान दिखलाई पड़े तो तीन मास की शेष आयु जाननी चाहिए। यदि दिन में सहसा रवि मण्डल कृष्ण वर्ण और रात में इसी प्रकार चन्द्र मण्डल एक वर्ण दिखलाई पड़े तो तीन मास की आयु समझनी चाहिए।

जो सूर्य या चन्द्रमा के चार बिम्बों को चारों विदिशाओं के कोणों पर देखे वह चार घटिका–एक घंटा छत्तीस मिनिट जीवित रहेगा और जो दोनों के चार टुकड़े चारों दिशाओं में देखे वह चार दिन जीवित रहेगा।[1]

दिशाओं में सूर्य के अनेक सछिद्र टुकड़े दिखलाई पड़े तो वह व्यक्ति चार मास या चार पक्ष में मृत्यु को प्राप्त होता है चन्द्रमा के आठ टुकड़े–चार दिशाओं में और चार विदिशा के चारों कोणों में दिखलाई पड़े तो वह व्यक्ति आठ दिन के भीतर मृत्यु को प्राप्त करता है।

यदि सूर्य, चन्द्रमा और तारा बिम्ब नीले दिखलाई पड़ें तो मुनियों के द्वारा उसका जीवन चार दिन का कहा गया है।[2]

यदि कोई व्यक्ति सूर्य और चन्द्रबिम्ब में से धुँआ निकलता हुआ देखे, सूर्य और चन्द्रबिम्ब को जलते हुए देखे अथवा सूर्य और चन्द्र बिम्ब में से जल या रूप निकलते हुए देखे तो वह छः दिन जीवित रहता है।[3]

---

1. **रवि–चंदाणं पिच्छइ चऊ सु विदिसासु बिबाइं ।**
   चउघडिआ चउदिणाइँ चउद्दिसँ तह य चउछिद्दं॥ 51॥
2. **ताराओ रवि–चंदं नीलं पिच्छेइ जो हु तस्साऊ।**
   दियहचचक्कं दिट्ठो इय भणिअं मुणिवरिंदेहि॥ 54॥
3. **धूमायंतं पिच्छइ रबि–ससि बिंबं च अहब पजलंतं।**
   सो छह दिणाइ जीवइ जल–सहिरं चिऊ पमुच्चंतं॥ 55॥

यदि किसी व्यक्ति को दिन की रात और रात का दिन दिखलाई पड़े और वह वैसा ही कहे भी तो, उसकी मृत्यु निकट समझनी चाहिए, इसमें संदेह करने का स्थान ही कहाँ है ?[1]

शरीर शास्त्र का कथन है कि जब वह मन और इन्द्रियाँ अपनी-अपनी नियत स्थिति में रहती हैं तब तक व्यक्ति का मस्तिष्क समुचित कार्य करता है, लेकिन जिस समय इन्द्रियों के संचालित करने वाले परमाणु विघटित होने लगते हैं उस समय मस्तिष्क शक्ति में निर्बलता आ जाती है, और व्यक्ति अपने ज्ञान का विकृत रूप देखने लगता है। इस विकृति का विश्लेषण करते हुए मानसिक अवस्था के क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध ये पाँच भेद बतलाये हैं। जब तक शरीर और मन स्वस्थ और शुद्ध हैं तब तक व्यक्ति के मन की क्षिप्तावस्था या एकाग्रावस्था रहती है। अभ्यासवश स्वस्थ और सदाचारी व्यक्ति एकाग्रावस्था की पराकाष्ठा को प्राप्त कर निरुद्धावस्था को प्राप्त करता है। साधारण कोटि के जीवों की मूढ़ या क्षिप्तावस्था को प्राप्त करता है। साधारण कोटि के जीवों की मूढ़ या क्षिप्तावस्था ही रहती हैं। लेकिन जिस समय मरण निकट आ जाता है उस समय साधारण कोटि के व्यक्ति की इंद्रिय शक्ति के क्षीण हो जाने के कारण विक्षिप्त मानसिक अवस्था प्रकट हो जाती है और व्यक्ति को संसार के पदार्थ भ्रमरूप में दिखलाई पड़ने लगते हैं। जो व्यक्ति विशेष ज्ञानवान् और चरित्रवान् हैं, उन्हें इस प्रकार के भ्रम द्योतक रिष्ट नहीं मालूम पड़ते हैं, क्योंकि उनकी इन्द्रियों की शक्ति अन्त समय तक यथार्थरूप में वर्तमान रहती हैं, इसलिये दिन की रात और रात का दिन दिखलाई पड़ना यह रिष्ट सर्वसाधारण जीवों की अपेक्षा से कहा है और यह रिष्ट इतना प्रबल है कि इसके दिखलाई पड़ते ही दो-चार दिन के भीतर मृत्यु हो जाती है। इसका मुख्य कारण यही है कि मस्तिष्क में केन्द्रीभूत ज्ञान तन्तुओं के विघटित या शिथिल हो जाने पर इस शरीर में आत्मा की स्थिति कायम रहना उपयुक्त नहीं होता है, क्योंकि शरीर मंदिर का सबसे प्रधान और उपयोगी भाग मस्तिष्क ही है, अतः इसके विकृत होने पर इस शरीर की स्थिति संभव नहीं है।

---

1. **पभरेइ निसा दिअहं दिअहं रयणी हु जो पयंपेइ ।**
   तस्स लहुहोइ मरणं किं बहुणा इय वियप्पेहिं ॥58॥

आँख, कान और नाक ये तीन ऐसे अंग हैं, जिनके जर्जरित होने पर शरीर-स्थिति का कायम रहना संभव नहीं। रात का दिन और दिन की रात यह स्थिति इन अंगों के जर्जरित होने पर ही दिखलाई पड़ती है।

यदि कोई व्यक्ति दर्पण में अपने या अन्य व्यक्ति के दाँतों को काला, सफेद, लाल या पीले रंग का देखे तो उसकी निकट मृत्यु समझनी चाहिए।[1]

दाँत खुरदरे और भयंकर आकार के दिखलाई पड़ें और जीभ सफेद भारी या काले रंग की दिखलाई पड़े अथवा जीभ में कांटे मालूम हों तो वह व्यक्ति निकट समय में ही मृत्यु को प्राप्त होता है। जिस व्यक्ति के ओठ काले पड़ जाये और नीचे का ओठ अकारण ही ऊपर के ओठ से भारी मालूम पड़े तथा मुँह सफेद रंग का दिखलाई पड़े तो वह व्यक्ति जल्दी ही मृत्यु को प्राप्त होता है। जिस मनुष्य के ऊपर के दाँत अकारण ही नीले वर्ण के हो जायें तथा नीचे के ओठ का लाल भाग सफेद या नीला पड़ जाये तो निकट समय में ही उसकी मृत्यु समझनी चाहिए। दर्पण में अपने मुँह को देखने पर मुँह टेढ़ा और विभिन्न वर्णों का दिखलाई पड़े तथा नाक मोटी और टेढ़ी मालूम पड़े तो निकट समय ही मृत्यु समझनी चाहिए।

छाया लक्षण :

रुग्ण व्यक्ति जो वहाँ खड़ा हो अपनी छाया न देखे तो निश्चय से दस दिन जीवित रहता है।[2]

अपनी या अन्य की छाया का ज्ञान करने की प्रक्रिया यह भी बताई गई कि दर्पण या जलाशय में छाया देखनी चाहिए। चाँदनी और सूर्य या दीपक के प्रकाश में भी छाया का दर्शन किया जा सकता है। यदि किसी को विकृत, टेढ़ी, छिन्न भिन्न, छोटी, बड़ी और अदर्शनीय अपनी छाया दिखलाई पड़े तो निकट मृत्यु समझनी चाहिए। जब तक छाया का सांगोपांग सौम्य दर्शन होता रहे तब

---

1. **असिय-सिय-रत्त-पीया दसणा अन्नस्य अण्णो अहवा।**
   पेच्छइ दप्पणयंमि य लहुमरणं तस्स निद्दिट्ठं॥ 64॥
2. **जइ आउरो ण पिच्छई णियछाया तत्थ संठिओ णूणं।**
   ता जीवइ दह दियहे इय भणियं सयलदरिसीहिं॥ 75॥

तक आयु शेष समझनी चाहिए। छाया को अपने पैरों द्वारा नाप कर गणित क्रिया द्वारा आयुशेष का ज्ञान किया गया है। सूर्योदय से लेकर मध्याह्न काल तक अपनी छाया को पैरों से नाप कर जितने पैर प्रमाण छाया जो उसमें 4 और जोड़कर 3 का भाग देना चाहिए। यदि भाग देने पर शेष सम राशि आवे तो मृत्यु और विषम राशि आवे तो जीवन शेष समझना चाहिए।

जो व्यक्ति अपनी छाया को दो रूपों में देखता है वह दो दिन जीवित रहता है और जो आधी छाया का दर्शन करता है वह भी दो दिन जीवित रहता है।[1]

रोगी अपनी छाया को अपने हाथों से नापकर अंगुलात्मक बना ले। जितने अंगुल छाया हो उसमें 15 जोड़कर 21 का भाग दे। सम शेष में दो दिन की आयु और विषम शेष में अधिक दिन की आयु समझनी चाहिए। उदाहरण– सोमशर्मा नामक व्यक्ति की प्रातःकाल 9 बजे की छाया $2^{1}/_{2}$ हाथ है। $2^{1}/_{2}$ हाथ के अंगुल बनाये तो =5/2 × 24/1 = 60 अंगुल छाया हुई 60 + 15 = 75 % 21= 3 लब्धि और शेष 13 आये। यहाँ शेष की संख्या विषम राशि है अतः दो दिन तक रोगी की मृत्यु नहीं होगी।

तत्काल रोगी की मृत्यु परीक्षा के लिये केवल दाहिने पांव की अंगुलात्मक छाया लेकर उसे तीन से गुणाकर 7 जोड़ देना चाहिए इस योगफलवाली राशि में 13 का भाग देने से समसंख्यक लब्धि और शेष दोनों ही आवें तो रोगी की तत्काल मृत्यु–एक दो दिन में समझनी चाहिए। यदि सम राशि लब्धि और विषम राशि शेष आवे तो 5 दिन आयु एवं इससे विपरीत शेष और लब्धि आवें तो रोगी स्वस्थ हो जाता है।

यदि कोई व्यक्ति अपनी छाया को बैल, हाथी, कौवा, गधा, मैना और घोड़ा इत्यादि अनेक रूपों में देखता है तो उसका तत्काल मरण जानना चाहिए।[2]

---

1. **दो न्छाया हु णियच्छइ दोण्णि दिणे होइ तस्स वरजीयं ।**
   अद्धच्छायं पिच्छइ तस्स विजाणेह दो दियहं ॥76॥
2. **वसह-कर-काय-रासह-महिसोहयजे हिं य.विविहरूवेहि ।**
   जो पिच्छइ णिअछाया लहुरमणं तस्य जाणेह ॥78॥

रोगी अपनी छाया के रूप आकार और लम्बाई इन तीनों को ही विकृत अवस्था में देखता है तो उसकी निकट मृत्यु समझनी चाहिए। नेवला, कुत्ता, हिरण,और सिंह के आकार छाया दिखलाई पड़े तो तीन दिन में मृत्यु समझनी चाहिए। छाया का हरा रूप दिखलाई पड़े तो दो दिन, नीला रूप दिखलाई पड़े तो तीन दिन, काला दिखलाई पड़े तो एक दिन और विचित्र वर्ण मिश्रित रूप दिखलाई पड़े तो 10 घंटे अवशेष जीवन समझना चाहिए। यदि अपने शरीर प्रमाण से दिन के दस बजे के पूर्व छोटी छाया मालूम हो और दस बजे के बाद से लेकर दिन के दो बजे तक शरीर प्रमाण से बड़ी छाया ज्ञात हो तो निकट मृत्यु समझनी चाहिए।

अपनी छाया को नीचे की ओर मुख किये, पीछे की ओर घूमते हुए या अव्यवस्थित रूप में देखता है तो उसका मरण समझना चाहिए।[1]

यदि कोई व्यक्ति अपनी छाया को धुँए से आच्छादित अग्नि से प्रज्वलित और बिना सिर के केवल छाया का धड़ ही देखता है तो उसका नियम से जल्दी ही मरण समझना चाहिए।[2]

स्वप्न लक्षण :

जो व्यक्ति प्रतिमा को हाथ रहित स्वप्न में देखता है उसका जीवन चार महीने, जो पैरों के बिना देखता है, उसका जीवन तीन वर्ष, जो घुटनों के बिना देखता है, उसका जीवन एक वर्ष और जो सिर रहित देखता है उसका जीवन पाँच दिन शेष समझना चाहिए।[3]

---

1. **अह पिच्छइ णिअछायं अहोमुहं च विक्खित्तं ।**
   तस्य लहु होइ मरणं णिद्दिट्ठं सत्थइत्तेहिं ॥ 79 ॥
2. **धूमंतं पजलतं छयाविंबं णियच्छए जो हु।**
   तह य कबंधं पिच्छइ लहु मरणं तस्स णियमेण ॥ 80 ॥
3. **करभंगे चउमासं चरणेहिं मुणिज्ज तिण्णि वरिसाइं।**
   जाणु विहीणे वरिसं सीमम्मि य पंच दियहाई ॥ 118 ॥

यदि स्वप्न में कोई व्यक्ति जिन प्रतिमा की जंघा नष्ट होते हुए देखे तो उसका जीवन दो वर्ष, जो कंधा नष्ट होते हुए देखता है उसका जीवन एक मास और जो प्रतिमा का उदर नष्ट होते हुए देखता है उसका जीवन आठ मास समझना चाहिए।[1]

स्वप्न में इष्टदेव का पूजन, दर्शन और आह्वानन करना देखने से विपुल धन की प्राप्ति के साथ-साथ परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति होती है। स्वप्न में देव प्रतिमा का कंपित होना रोना, गिरना चलना, हिलना, नाचना और गाता देखने से आधि-व्याधि और मृत्यु होती है। स्वप्न में कलह एवं लड़ाई झगड़े देखने से स्वस्थ व्यक्ति रुग्ण और रोगी व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होता है। नाई द्वारा स्वयं अपना या अन्य का क्षौर (हजामत) कार्य करते हुए देखने से रोग और व्याधि के साथ धन और पुत्र नाश, केशलोंच करना देखने से भयंकर व्याधि और स्वप्न में नाचते हुए कबंध (कटे सिर वाले) को देखने से आधि, व्याधि और धन नाश होता है। अंधकारमय स्थानों में वन, भूमि, गुफा और सुरंग आदि में प्रवेश करते हुए स्वप्न में अपने को देखने से रोग और अन्य को देखने से अपनी छः महीने के भीतर मृत्यु समझनी चाहिए। स्वप्नों में इष्ट वस्तुएँ अनिष्ठ रूप से दिखलाई पड़े और अनिष्ट वस्तुएँ इष्ट रूप से दिखलाई पड़ें वे स्वप्न मृत्यु करने वाले होते हैं। पर्वत, मकान की छत और वृक्ष पर से अपने या पर को गिरते हुए देखने से आधि, व्याधि के साथ सम्पत्ति हानि उठानी पड़ती है। गन्दे जल या कुँआ के अन्दर गिरता या डूबता देखने से स्वस्थ व्यक्ति रोग और रोगी व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होता है। तालाब या नदी में प्रवेश करता देखने से रोगी को मरण तुल्य कष्ट होता है। जो रोगी व्यक्ति स्वप्न में अपनी छाया को अपने हाथों से छिन्न करता हुआ देखता है, वह जल्द ही मृत्यु को प्राप्त करता है। अग्नि में स्वयं को या अन्य किसी को जलता हुआ देखने से पाँच मास के भीतर मृत्यु होती है।

---

1. **जंघासु दुण्णि वरिसं असयभंगम्मि एयमासं तु ।**
   उयरविणासे दिट्ठे पमिमाए अट्ठ मासे य ॥119॥

यदि स्वप्न में जिनेन्द्र प्रतिमा के छत्र का भंग दिखलाई पड़े तो उस देश के राजा का मरण निश्चित समझना चाहिए। यदि परिवार अनुगामियों का मरण दिखलाई पड़े तो अपने किसी नौकर या अनुगामी का मरण समझना चाहिए।[1]

जो व्यक्ति स्वप्न में अपने को विलीन होते हुए देखता है, कौए और गीधों के द्वारा अपने शरीर को खाते हुए देखता है या स्वयं को वमन करते हुए देखता है तो वह दो महीने जीवित रहता है।[2]

स्वप्न में अपने अंगों का काटना, टूटना, छिन्न होना विकृत होना और अंगों से रक्त स्राव का होना देखने से कुछ महीनों में ही मरण होता है। स्वप्न में लिङ्ग और गुदा जैसे गुप्तांगों के विकृत दर्शन मृत्यु का कारण है, केवल ज्ञान होरा में श्री चन्द्रसेन मुनि ने स्वप्न में शृगाल, काक, गिद्ध मार्जार, सिंह और चीता के द्वारा अपने शरीर का भक्षण करना देखने से तीन महीने में मृत्यु का होना बतलाया है।

जो स्वप्न में भैंसे, गधे और ऊँट की सवारी द्वारा अपने को दक्षिण दिशा की ओर जाता हुआ देखता है। तेल या घी से भींगा हुआ अपने को देखता है, तो वह एक मास जीवित रहता है।[3]

स्वप्न में, किसी के हाथ से केला छीनकर खाना, कनेर के फूल को तोड़ना, खिलाड़ियों के मल्लयुद्ध को देखना तथा उस युद्ध में किसी की मृत्यु का दर्शन करना, घड़ी को गिरते हुए देखना या अपने हाथ से घड़ी का गिरना देखना, स्वप्न में किसी भयंकर आवाज का सुनना, दक्षिण दिशा की ओर नग्न होकर गमन करते हुए देखना एक मास की आयु का कारण बताया है। जिन

---

1. **छत्तस्य रायमरणं भंगे दिट्ठम्मि होइ निव्भंतो।**
   परिवारस्स मरणं णिअच्छिए होइ परिवारे॥ 120॥
2. **जइ सुमिणम्मि विलिज्जइ खज्जइ काएहिं अहव गिद्धेहिं।**
   अहवा कुणेइ छद्दी मासजुयं जीवए सो दु॥ 122॥
3. **दक्खिदिसाएूं णिजदि महिस -खरो ट्ठेहिं जोहु सुमिणम्मि ।**
   घय-तिलेहिं विलित्ते मासिक्कं सोदु जीवेइ ॥123॥

स्वप्नों में व्यक्ति की शारीरिक शक्ति का ह्रास प्रकट हो और इन्द्रियाँ शक्तिहीन मालूम पड़े वे स्वप्न व्यक्ति को रोग सूचक और रोगी व्यक्ति को मरण सूचक हैं। स्वप्न में ऊपर से नीचे गिरना, कनेर पुष्प का भक्षण करना भयंकर आवाज सुनना या करना, किसी को रोते हुए देखना, कान, नाक और आँख इन अंगों का विकृत होना, किसी प्रेमिका द्वारा तिरस्कार का होना, चाय पीते हुए स्वयं अपने को देखना या अन्य पुरुषों को चाय गिराते हुए देखना एवं छछूंदर के साथ क्रीड़ा करते हुए देखना ये स्वप्न एक मास के मरण के सूचक हैं। स्वप्न में भोजन करना, वमन और दस्त होना, मलमूत्र और सोना-चाँदी का वमन करना, रुधिर भक्षण करना या रुधिर वमन करना, अन्धकारपूर्ण गर्त में गिरकर उठने का प्रयत्न करने पर भी उठने में असमर्थ होना, दीपक या बिजली को बुझते हुए देखना, घी, तेल और शराब की शरीर में मालिस करना एवं किसी वृक्ष या लता का जड़ से गिरना, देखने से कुछ महीनों में ही मरण होता है।

जो स्वप्न में सूर्य और चन्द्र ग्रहण को देखता है अथवा पृथ्वी पर स्वप्न में सूर्य और चन्द्र के पतन को देखता है, वह एक महीने से कुछ अधिक जीवित रहता है।[1]

जो स्वप्न में रुधिर, चर्बी, पीप, चमड़ा, घी और तेल के गड्ढे में गिरकर डूबता है, वह निश्चित एक मास जीवित रहता है।[2]

जिसे सूर्य और चन्द्रमा दिखलाई न पड़े। जो मेरु के समान चले एवं जो मुँह खोलकर जल्दी-जल्दी श्वांस छोड़े और ग्रहण करें वह शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होता है।[3]

---

1. **रवि-चंदाणं गहणं अहवा भूमीहणियइ पडणंवा ।**
   जो सुमिणस्मि णियच्छह सो जीवइ समहिअं मासं ॥124॥
2. **रुहिर-वस-पूअ-तय-घय-तिल्लेहि य पूरियाइ गत्ताए ।**
   जो हु णिबुडुइ सुमिणे मासिक्कं जीवए सो दु ॥129॥
3. **ण हु दीसइ ससिसूरो मेरुविय चलेइ वियसए वयणं ।**
   सांस मुएइ सीयं लहु मरणं तस्स णिद्दिट्ठं ॥134॥

जिसकी जिह्वा से जल न गिरे जीभ से रस का अनुभव न हो, जिसका शरीर स्पर्श का अनुभव न करे और जो अपना हाथ गुप्त स्थानों पर रखे वह सात दिन जीवित रहता है।[1]

इस प्रत्यक्ष रिष्ट के प्रकरण में जैनाचार्य की इतनी अपनी विशेषता है कि उन्होंने मंत्र या देवाराधना की अपेक्षा इसमें नहीं रखी है। कारण मंत्र की साधना समस्त व्यक्तियों से संभव नहीं है इसलिए कोई भी व्यक्ति उपर्युक्त नियमों के द्वारा अपनी आयु को ज्ञात कर सकता है।

निर्यापकाचार्य का अंतिम कर्तव्य

उपदेश सुनाते हुए जब क्षपक की शारीरिक शक्ति एकदम क्षीण हो जाये; उठने, बैठने एवं बोलने आदि की भी शक्ति न रहे तब केवल आत्मचिन्तन अथवा पंचपरमेष्ठियों के चिन्तन में क्षपक के उपयोग को लगाने का प्रयत्न करना चाहिए। इसके बाद जब क्षपक के प्राणों का अन्त होने को हो तब से मृत्यु होने तक मधुर वाणी में धीरे-धीरे कानों में णमोकार मंत्र सुनाते रहना चाहिए।

(संदर्भ : समाधि दीपक, पृ. 57)

---

1. **जीहा जलं न मेलइ ण य. मुणइ रसं ण फासए अंग ।**
   सो जीवइसत्त दिणे गुज्झे जो खिवइ णियहत्थं ॥141॥

सावधानियाँ

1. कितनी भी अस्वस्थ्यता की स्थिति में शीघ्रता से सल्लेखना का निर्णय नहीं लेना चाहिए। गर्म जल से उपचार और प्रयोग कर रोगी को सामान्य करें।
2. समाधि के समय दो-तीन योग्य वैद्य या डॉक्टर की व्यवस्था करें जिससे क्षपक के भोजन-पान की अनुकूलता-प्रतिकूलता का ध्यान रखा जा सके।
3. उपदेश, पाठ आदि सुनाने का समय निश्चित करना चाहिए। अधिक लोग पाठ न सुनायें। रुचि के अनुसार पाठ सुनायें।
4. समाधि के समय कक्ष में आने-जाने वालों की शुद्धि होना चाहिए।
5. क्षपक के मल का विरेचन नियमित करें। आवश्यक होने पर प्राकृतिक साधनों का उपयोग किया जा सकता है।
6. जिनको धर्म में श्रद्धा नहीं उन्हें क्षपक के पास नहीं जाना चाहिए।
7. समाधि में क्षेत्र, काल और देश आदि की अनुकूलता का ध्यान अवश्य रखें।
8. परिजनों को ज्यादा समय न दे, इनकी निकटता से राग बढ़ता है।
9. दर्शनार्थियों को दूर से मौन पूर्वक दर्शन करने की व्यवस्था हो।
10. आचार्य के अलावा अन्य लोग क्षपक से वार्तालाप न करें।
11. क्षपक को शोर से बचाएँ, क्षपक के पास सांसारिक, पारिवारिक बातें न करें।
12. समाधि का प्रदर्शन न करें, क्षपक के भावों की विशुद्धि का ध्यान रखें।
13. क्षपक को होने वाली वेदना एवं अशान्ति के कारणों को समय के साथ वैद्य या डाक्टर को बतायें।
14. क्षपक के कक्ष का वातावरण क्षपक के अनुकूल रखें।

खण्ड – तृतीय

शवदाह विधि

भोगभूमि में उत्पन्न होने वाले जीवों के शरीर, आयु पूर्ण होने पर कपूर की तरह समाप्त हो जाते हैं। कर्मभूमि के मनुष्य और तिर्यंचों के शरीर औदारिक होते हैं। इन जीवों के प्राणान्त हो जाने पर देहान्त का प्रसंग उपस्थित होता है। उनके मृत शरीर के संस्कार को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं –

1. मोक्षगामी, तीर्थंकर, गणधर और सामान्य केवली के शरीर का अन्तिम संस्कार।
2. मुनि, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक के शरीर का अन्तिम संस्कार।
3. सामान्य मनुष्यों/श्रावकों के मृत शरीर का अन्तिम संस्कार।

1. तीर्थंकर आदि मोक्षगामी जीवों के शरीर, आयु पूर्ण हो जाने पर क्षण भर में बिजली की तरह आकाश को दैदीप्यमान करते हुए विलीन हो जाते हैं, क्योंकि यह स्वभाव है कि तीर्थंकर आदि मोक्षगामी जीवों के शरीर के परमाणु अन्तिम समय बिजली के समान क्षण भर में स्कंध पर्याय छोड़ देते हैं।[1] इसके बाद अग्निकुमार देवों के इन्द्र उन तीर्थंकर आदि के पवित्र शरीर की रचना कर उसे पालकी में बैठा कर अपने मुकुटों से उत्पन्न की गई अग्नि को अगुरु– कपूर आदि सुगंधित द्रव्यों से जलाकर उसमें उस वर्तमान शरीर को जलाकर समाप्त कर देते हैं।

तीर्थंकरों के अंतिम संस्कार के लिए चौकोर कुण्ड में गार्हपत्य अग्नि की स्थापना की जाती है।

गणधर देवों के निर्वाण के समय इनके शरीर के अन्तिम संस्कार के लिए इन्द्र द्वारा त्रिकोण कुण्ड में आह्वनीय अग्नि की स्थापना की जाती है।

सामान्य केवलियों के निर्वाण के समय गोल कुण्ड में दक्षिणाग्नि की स्थापना की जाती है। ये महा–अग्नियाँ कही गई हैं, ये पवित्र होती हैं।[2] इस

---

1. **हरिवंश पुराण** – 65, 12, 13, पृ. 766
2. **आदि पुराण** – 47, 343, 350, 507

प्रकार मोक्षगामी तीर्थंकर आदि के शरीरावशेषों का अंतिम संस्कार तीन प्रकार के कुण्डों में तीन प्रकार की पवित्र अग्नियों की स्थापना कर किया जाता है। (कहीं कहीं नख और केश शेष बचने का भी उल्लेख मिलता है।)

2. मुनि आर्यिका आदि सकल व्रती एवं ऐलक, क्षुल्लक आदि देशव्रतियों के शरीर के अंतिम संस्कार को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। यथा –

1. प्रायोपगमन मरण करने वाले –

प्रयोगपगमन मरण करने वाले साधु अपने शरीर की सेवा, वैय्यावृत्ति न स्वयं करते है और न दूसरों से कराते हैं। वे अपना अन्त समय जानकर जंगल, पर्वत, नदी के तट या वृक्ष की कोटर आदि में चले जाते हैं एवं स्थिर चित्त होकर भावों की विशुद्धि पूर्वक अपने प्राण त्याग देते हैं। अन्य किसी साधु या श्रावक को उनकी समाधि की जानकारी नहीं हो पाती। अतः शव वहाँ ही पवन आदि से सूख जाता है या पशु पक्षी भक्षण कर जाते हैं।

2. इंगनिमरण करने वाले –

इंगनिमरण करने वाले साधु किसी से सेवा वैय्यावृत्ति नहीं कराते अपितु स्वयं ही शरीर की वैय्यावृत्ति आदि करते हैं। ऐसे क्षपक का जब प्राणान्त हो जाता है। तब अन्य साधु जन उनके शव को ले जाकर किसी पर्वत के समीप अथवा नदी के तट पर प्रासुक स्थान में छोड़ देते हैं।[1]

शव क्षेपण से शुभाशुभ –

क्षपक के मृत शरीर की स्थापना करने के बाद तीसरे दिन वहाँ जाकर देखना चाहिए कि संघ का विहार सुख से होगा कि नहीं और क्षपक को किस गति की प्राप्ति हुई। जितने दिनों तक पशु–पक्षी शरीर का स्पर्श नहीं करते उतने वर्षों तक राज्य में क्षेम रहता है। जिस दिशा में पशु–पक्षी शरीर को ले जावें उस दिशा में विहार करने से संघ में क्षेमकुशल रहती है। शरीर का मस्तक या दन्त पंक्ति शिखर पर दिखे तो सर्वार्थसिद्धि, यदि उच्च स्थल पर दिखे तो वैमानिक देव, सम भूमि में दिखे तो ज्योतिष्क या व्यन्तर देव, गड्ढे में दिखे तो क्षपक को

---

1. **भगवती आराधना**

भवनवासी देवों में उत्पन्न हुआ जानना चाहिए।[1]

3. भक्तप्रत्याख्यान मरण करने वाले –

भक्तप्रत्याख्यान मरण करने वाले मुनिराज की समाधि सर्वविदित होती है, ऐसे मुनि, आर्यिका, ऐलक, क्षुल्लक, उत्तम श्रावक, मठपति (भट्टारक) के शव को गृहस्थों द्वारा बनाई गई शिविका या पालकी में स्थापित कर ग्राम के बाहर ले जाते हैं।[2]

यदि शव व्यन्तर देव के निमित्त से उठ खड़ा हो और उसका मुखग्राम की तरफ हो तो वह ग्राम में प्रवेश करेगा इससे ग्राम के भीरु लोग भयभीत होंगे। अति भीरुप्राण त्याग देंगे। इसलिए शव का मस्तक ग्राम की तरफ करने से अनेक उपद्रवों का निराकरण होता है। (संयम प्रकाश, पूर्वार्द्ध, भाग 2, पृ. 972)

समाधि के बाद संघ का कर्तव्य :

अपने गण के मुनि के समाधिस्थ होने पर उस दिन सर्व संघ को उपवास करना चाहिए एवं स्वाध्याय नहीं करना चाहिए। दूसरे गण के मुनि के समाधिस्थ होने पर स्वाध्याय नहीं करना चाहिए, उपवास भजनीय है।

शव छेदन विधि – यदि रात्रि में मरण हो तो बाल, वृद्ध, शिक्षक, बहु तपस्वी, कायर स्वभावी, रोगी, वेदना आदि से दुखी मुनि अथवा आचार्य को छोड़कर धीर, वीर एवं निद्रा विजयी साधु क्षपक के हाथ या पैर के अंगुष्ठ का छेदन करें या बाँध देवें। यदि छेदन क्रिया न की जावेगी तो धर्मद्रोही अथवा कौतुक स्वभावी व्यन्तरादि देव मृतक के शरीर में प्रवेश करके उठेगा, भागेगा तथा और भी अन्य प्रकार की क्रीड़ायें करेगा, संघ में बाधा उत्पन्न करेगा अतः जागरण, बन्धन और छेदन की क्रियायें अवश्य करनी चाहिए।

शव यात्रा : भक्तप्रत्याख्यान मरण करने वाले साधु के शव को गृहस्थ श्रावक द्वारा शिविका में स्थापित कर दृढ़ बंधनों से बाँधा जाता है ताकि वह उछल न सके। शव का मस्तक ग्राम की ओर हो अथवा पीठ ग्राम की ओर

---

1. **भगवती आराधना 1662, 1665**
2. **समाधि दीपक 58-62**

हो, शव को निश्चित मार्ग से शीघ्रतापूर्वक ले जाना चाहिए। मार्ग में न खड़ा होना चाहिए और न पीछे मुड़कर देखना चाहिए। शव के आगे एक गृहस्थ मुट्ठी में कुश दर्भ लेकर चले। एक गृहस्थ कमण्डलु को जल से पूर्ण करके तथा उसकी नलिका आगे करके जल की पतली-पतली धार छोड़ते हुए आगे-आगे चले पीछे मुड़ करके न देखें।[1] पूर्व में देखे हुए स्थान पर डाभ की मुट्ठी खोलकर मुनि की देह को स्थापन करने की भूमि को सम करें। यदि डाभ/तृण न मिले तो ईंट के चूर्ण अथवा वृक्षों की शुष्क केशर से संस्तर को सर्वत्र सम करे।

शवदाह का स्थान -

शव को क्षेपण करने का स्थान नगरादि से न अति दूर, न अति समीप हो, एकान्त हो, प्रकाश युक्त हो, मर्दन किया हुआ हो अत्यन्त कठोर तथा अत्यन्त अपवित्र न हो बिलादि से रहित हो, बहुत ऊँचा, नीचा न हो, अति सचिक्कण न हो, रज रहित और बाधा रहित हो।

क्षपक की वसतिका से शव क्षेपण करने का स्थान नैऋत्य, दक्षिण और पश्चिम दिशा में होना चाहिए। अन्य दिशा में शव क्षेपण करने से संघ में कई दोष उत्पन्न होते हैं जैसे आग्नेय दिशा में शव क्षेपण करने से ईर्ष्या, वायव्य में कलह, पूर्व में संघ में फूट, उत्तर में व्याधि, ईशान में पक्षपात आदि दोष होते हैं। जिस दिशा में ग्राम हो उस दिशा में क्षपक का मस्तक करके देह स्थापित करना चाहिए। मृतक के निकट मयूर पिच्छीकादि उपकरण भी स्थापित करें क्योंकि यदि कोई क्षपक अन्त में संक्लेश परिणामों द्वारा सम्यक्त्व की विराधना करके व्यन्तरादिक देवों में उत्पन्न हुआ हो तो पिच्छी सहित अपने शरीर को देखकर मैं पूर्व भव में मुनि था यह जान सकेगा और पुनः धर्म में दृढ़ श्रद्धा करके सम्यग्दृष्टि हो जायेगा।

---

1. **जदि विक्खादा भत्तपइण्णा, अज्जा व होज्ज काल गदो।**
   देउलसागारित्ति व सिवियाकरणं पि तो होज्ज॥ भग. आ. 1979

क्षपक के मरण से संघ पर प्रभाव :

क्षपक के मरण से संघ पर क्या प्रभाव पड़ेगा यह जानने के लिए किस नक्षत्र में मरण हुआ यह जानना चाहिए।

जघन्य नक्षत्र – शतभिषा, भरणी, आर्द्रा, स्वाति, अश्लेषा और जेष्ठा इनमें से किसी एक नक्षत्र में मरण हो तो संघ में क्षेम कुशल होता है।

मध्यम नक्षत्र – अश्वनी, कृतिका, मृगशिरा, पुष्य, मघा तीनों पूर्वा, हस्त, चित्रा, अनुराधा, मूल, श्रवण, धनिष्ठा और रेवती इन नक्षत्रों में मरण हो तो एक और मुनि का मरण होगा।

उत्कृष्ट नक्षत्र – तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, रोहणी और विशाखा इन नक्षत्रों में क्षपक का मरण हो तो निकट भविष्य में दो मुनियों का मरण होता है। गण रक्षा हेतु मध्यम नक्षत्रों में मरण होने पर तृण का एक प्रतिबिम्ब और उत्कृष्ट नक्षत्र में मरण होने पर तृण के दो प्रतिबिम्बों का मृतक के निकट **'द्वितोयोऽयोर्पितः'** कहकर स्थापन कर देना चाहिए, यदि पिच्छी कमण्डलु वहाँ उपलब्ध हो तो सम्यक् प्रकार से प्रतिलेखन करके उस सहित ही प्रतिबिम्बों का स्थापना करना चाहिए। प्रतिबिम्ब बनाने के लिए वहाँ तृण न मिले तो तन्दुलों का चूर्ण, पुष्प की केशर, भस्म अथवा ईंट के चूर्ण से जो भी प्राप्त हो सके उससे ऊपर ककार और नीचे यकार अर्थात् काय लिख देना चाहिए और यदि पिच्छी कमण्डलु हो तो वे भी स्थापित कर देने चाहिए। संघ की शान्ति के लिए यह कार्य अवश्य करना चाहिए। इसमें संकल्पी हिंसा का दोष नहीं लगता यह तो एक साथ दो या तीन शवों का दाह संस्कार किया जा रहा है ऐसा जानना चाहिए।

महन्मध्यमक्षत्रमृते शान्तिर्विधीयते।
यत्न तो गण रक्षार्थं जिनार्चकरणादिभिः॥

उत्कृष्ट और मध्यम नक्षत्र में क्षपक का मरण होने पर गण की रक्षा के अर्थ यत्नपूर्वक जिनपूजा आदि क्रियाओं से शांति की जाती है। साधुजन तपश्चरण, ध्यान आदि द्वारा एवं श्रावक जिनपूजा, दानादि के द्वारा शांति कर्म करके शांति का उपाय करते हैं। (संयम प्रकाश, पूर्वार्द्ध, द्वितीय भाग,पृ. 974)

शव दाह के समय भक्तियाँ :

सामान्य मुनि की समाधि होने पर शरीर के दाह संस्कार के समय सिद्ध भक्ति, योग भक्ति, शान्ति भक्ति और समाधि भक्ति करना चाहिए। आचार्य की समाधि होने पर शरीर के दाह संस्कार के समय सिद्ध, भक्ति श्रुत भक्ति, चरित्र भक्ति, योग भक्ति, शान्ति भक्ति और समाधि भक्ति करना चाहिए।

शवदाह विधि :

छह फुट लम्बा, छह फुट चौड़ा, तीन फुट गहरा गड्ढा खोदें, चारों तरफ सुरक्षा घेरा बनायें। संस्तर को सम बनाकर चारों ओर खूंटी गाड़ें और उनको मौली से तीन बार वेष्ठित करें। पद्मासन से शव को सिर से पैर तक का माप लें, माप के बराबर संस्तर पर तीन रेखाओं का एक त्रिकोण बनावें। सर्वप्रथम भूमि पर चन्दन का चूरा डालें, फिर रोली से त्रिकोण रूप तीन रेखायें डालें, टूटी एवं विषम न हों। इसके बाद त्रिकोण के ऊपर सर्वत्र मसूर का आटा डालें। त्रिकोण के तीनों कोनों पर तीन उल्टे स्वस्तिक बनावें (चित्र परिशिष्ट 2 में देखें) तीनों रेखाओं के ऊपर तीनों ओर सब मिलकर नौ, सात या पाँच **रँ** लिखें त्रिकोण के मध्य में ॐ ह्रीं अर्हं लिखें फिर

ॐ ह्रीं ह्रः काष्ट संचयंकरोमि स्वाहा

इस मंत्र को पढ़कर त्रिकोणाकार ही लकड़ी जमावें पश्चात्

ॐ ह्रीं ह्रौं झौं अ सि आ उ सा काष्ठे शवं स्थापयामि स्वाहा।

मंत्र उच्चारण करते हुए शव को काष्ठ पर स्थापित करें और

ॐ ॐ ॐ ॐ रं रं रं रं अग्नि संधुक्षणं करोमि स्वाहा

यह मंत्र बोलकर अग्नि लगावें (सोमसेन भट्टारक)

शव को दाह संस्कार करने पर भी तीसरे दिन वहाँ जाकर उनकी अस्थियों आदि की यथायोग्य क्रिया करना चाहिए।[1]

---

1. **त्रैवर्णिकाचार - 147, 148 पृ. 388**

निषिद्या से लौटने के पश्चात् कर्त्तव्य :

1. निषद्या स्थान से लौटने के पश्चात् उस स्थान पर जहाँ सल्लेखना हुई है वहाँ जाकर एक कायोत्सर्ग कर कहें कि हे देव! यहाँ हमारा संघ ठहरना चाहता है उसकी क्षेम कुशल के लिये स्थान दें।

2. पश्चात् यदि शव को स्पर्श नहीं किया है तो शुद्धि मात्र करें स्पर्श होने पर शिर से पैर तक तीन धारा देकर दण्ड स्नान करें।

3. निषद्या से लौटने के पश्चात् गृहस्थों से वैय्यावृत्ति के लिये मँगाये हुए वस्त्र तथा काष्ठादि उपकरण जो लौटाने योग्य हो उन्हें यथा स्थान लौटाना चाहिए।

गृहस्थ श्रावक के शवदाह की विधि :

गृहस्थ श्रावकों के मृत शरीर के संस्कार के लिये दो घड़ी के भीतर ही परिवार के सब लोगों को एकत्रित होकर मृतक को श्मशान में ले जाना चाहिए, क्योंकि दो घड़ी के बाद उस मृतक शरीर में अनेक त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं। श्मशान में जो भूमि जीव रहित हो वहाँ सूखा प्रासुक ईंधन एकत्रित कर दाह-क्रिया करने के पश्चात् अपने घर आकर प्रासुक पानी से स्नान करना चाहिए। तीन दिन बाद श्मशान जाकर भस्म एवं अस्थि विसर्जन आदि करने का उल्लेख है क्योंकि अग्नि की उत्कृष्ट आयु 3 दिन की है।[1] तीन दिन में जब अग्नि पूर्णतः शान्त हो जाती है तब अन्य क्रिया करना चाहिए।

शव गाड़ने की विधि :

संस्कारः स्यान्निखननं नाम्नं प्राक् बालकस्य तु।
तद्ध्वमशनादर्वाग्भवेत्तद्दहनं च वा॥ 53॥

नामकरण से पहले मरे हुए बालक का शरीर-संस्कार खनन अर्थात् जमीन में गाड़ना है। नामकरण के बाद और अशन क्रिया से पहले मरे हुए का खनन अथवा दहन है।

---

1. **गोम्मटसार जीवकाण्ड, 208, पृ. 122**

भावार्थ – नामकरण के पहले मरे तो जमीन में गाढ़ें। तथा नामकरण के बाद और अशनक्रिया से पहले मरे तो उसे जमीन से गाड़े या जलावें।

दन्तादुपरि बालस्य दहनं संस्कृतिर्भवेत्।
तयोरन्यतरं वाऽऽहुर्नामोपनयनान्तरे॥ 55॥

दांत उग आने बाद बालक मरण को प्राप्त हो तो उसका दहन संस्कार करें। अथवा नामकरण और उपनयन से पहले मरे हुए बालक का संस्कार खनन और दहन इन दोनों में से एक करें। यद्यपि विकल्प में यह बात कही गई है तो भी इसका निर्वाह इस तरह करना चाहिए कि तीसरे वर्ष जो चूलाकर्म होता है उस चूलाकर्म से पहले और नामकरण के बाद अर्थात् कुछ कम दो वर्ष तक तो जमीन में ही गाड़े, पश्चात् तीन वर्ष पूर्ण न हों तब तक जमीन में गाड़े या जलावें–दोनों में से एक करें। तीन वर्ष के बाद जमीन में न गाड़े किन्तु जलावें।

देशान्तर में मरण :

अपने कुटुम्ब का कोई व्यक्ति देशान्तर को चला जाय और उसका कोई समाचार न आवे तो ऐसी दशा में वह पूर्व वय (तरुण अवस्था की पूर्व अवस्था) का हो तो अट्ठाईस वर्ष तक, मध्यम वय का हो तो पंद्रह वर्ष तक और अपूर्व वय (मध्यम वय के बाद की अवस्था) का हो तो बारह वर्ष तक उसके आने की राह देखी जाय। अनन्तर विधि–पूर्वक उसकी प्रेत (शव) क्रिया करनी चाहिए। उसका छह वर्ष तक अपनी शक्ति के अनुसार प्रायश्चित ग्रहण करना चाहिए और यदि प्रेत कार्य करने पर वह आ जाय तो उसका सर्वौषधि रस से और घृत से अभिषेक करें, उसके सब जातकर्म संस्कार करें, नवीन यज्ञोपवीत संस्कार करें और यदि उसका पहले विवाह हुआ हो और वह पूर्व पत्नी जीती है तो उसी के साथ पुनः विवाह किया जाये।

रजस्वला–मरण :

रजस्वला स्त्री मर जाय तो उसे स्नान कराकर और दूसरे वस्त्र पहनाकर विधिपूर्वक उसका दहन करे।

गर्भिणी-मरण :

गर्भवती स्त्री गर्भ के छह महीनों के पहले मर जाय तो उसका गर्भ सहित ही दहन करें, गर्भच्छेद न करें। यदि गर्भ छह महीनों से ऊपर का हो तो उस मृत गर्भिणी को श्मशान में ले जायें, वहाँ उसका पति, पुत्र, पिता या बड़ा भाई इनमें से कोई उसके नाभि से नीचे के बायें भाग की तरफ से उदर को चीरकर बच्चे की बाहर निकालें। बालक का जल से अभिषेचन करें। यदि बालक जीता हो तो उसे पालन-पोषण के लिए दे देवें। उदर के छेद में घृत भरकर दाह क्रिया करें।

दुर्मरण :

विद्युत्तोयाग्निचाण्डालसर्पपाशूद्रिजादपि ।
वृक्षव्याघ्रपशुभ्यश्च मरणं पापकर्मणाम्॥102॥

बिजली, जल, अग्नि, चांडाल, सर्प, पक्षी, वृक्ष, व्याघ्र तथा अन्य पशु इत्यादि के द्वारा पापियों का मरण होता है।

आत्मानं घातयेद्यस्तु विषशस्त्राग्निना यदि।
स्वेच्छया मृत्युपाप्तोति स याति नरकं ध्रुवम्॥ 103॥
देशकालभयाद्वापि संस्कर्तु नैव शक्यते ।
नृपाद्याज्ञां समादाय कर्त्तव्या प्रेतसत्क्रिया॥104॥
वर्षादूर्ध्व भवेत्तस्य प्रायश्चित्तं विधानतः।
शान्तिकादिविधिं कृत्वा प्रोषधादिकसत्तपः॥ 105॥
मृतस्यानिच्छया सद्यः कर्त्तव्या प्रेतसत्क्रिया।
प्रायश्चित्तविधिं कृत्वा नैव कुर्यान्मृतस्य तु॥ 106॥
शस्त्रादिना हते सप्तदिनादर्वाक् मृतो यदि।
भवेददुर्मरणं प्राहुरित्येवं पूर्वसूरयः ॥ 107॥

जो विष, शस्त्र, अग्नि आदि के द्वारा आत्मघात कर स्वेच्छा मरण को प्राप्त होता है वह सीधा नरक जाता है। ऐसे मनुष्य का देश और काल के भय से दाह संस्कार नहीं कर सकते हों तो राजा आदि की आज्ञा लेकर उसकी दाह

क्रिया करना चाहिए। छह माह बाद शांतिविधान करके उसका विधिपूर्वक उपवास आदि प्रायश्चित ग्रहण करे। यदि वह अपनी अनिच्छा से विषादि द्वारा मरण को प्राप्त हुआ हो तो उसका दाह-संस्कार तत्काल करे। उसके इस अनिच्छा मरण का प्रायश्चित नहीं भी लें। शस्त्र आदि का प्रहार होने पर सात दिन के पहले यदि उसका मरण हो जाय तो वह दुर्मरण है, ऐसा पूर्वाचार्य कहते हैं।

मरण के बाद शवदाह की प्रक्रिया को क्रियाकोश में श्री किशनसिंह जी ने निम्नानुसार वर्णन किया है –

पूरी आयु करिवि जिय मरै, ता पीछे जैनी इम करै ।
घड़ी दोय में भूमि मसान, ले पहुंचे परिजन सब जान ॥1300॥
पीछे तास कलेवर मांहि, त्रस अनेक उपजै सक नांहि ।
मही जीव बिन लखि जिह थान, सूकौ प्रासुक ईंधण आन ॥1301॥
दगध करिचि आवै निज गेह, उसनोदकतें स्नान करेह।
वासन तीन बीति है जबै, कछु इक शोक मिटणको तबै ॥1302॥
स्नान करिचि आवै जिन गेह, दर्शन कर निज घर पहुंचेह।
निज कुलके मानुष जे थाय, ताके घरते असन लहाय ॥1303॥
दिन द्वादश बीते हैं जवे, जिनमंदिर इम करिहै तबे ।
अष्ट द्रव्यतै पूज रचाय, गीत नृत्य वाजित्र बजाय ॥1304॥
शक्तिजोग उपकरण कराय, चंदोवादिक तासु चढाय ।
करिवि महोछव इह विधि सार, पात्रदान दे हरष अपार ॥1305॥

जब यह जीव आयु पूर्ण कर मरता है तब उसके मरने के बाद जैन धर्म के धारक इस प्रकार की विधि करते हैं – दो घड़ी के भीतर परिवार के सब लोग एकत्रित होकर मृतक को श्मशान में ले जाते हैं क्योंकि दो घड़ी के बाद उस कलेवर में अनेक त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं। श्मशान में जो भूमि जीव रहित हो, वहाँ सूखा-प्रासुक ईंधन एकत्रित कर दाह क्रिया करते हैं और पश्चात् अपने घर आकर प्रासुक पानी से स्नान करते हैं। जब तीन दिन बीत

जाते हैं और शोक कुछ कम हो जाता है तब स्नान कर जिनमन्दिर जाते हैं और दर्शन कर अपने घर आते हैं। कुटुम्ब के जो लोग हैं वे उसके घर भोजन करते हैं। जब बारह दिन बीत जाते है तब जिनमंदिर में अष्टद्रव्य से पूजा रचाते हैं, बाजे बजाकर गीत नृत्य आदि करते हैं, शक्ति के अनुसार उपकरण तथा चंदोबा आदि चढ़ाते हैं। इस तरह महोत्सव पूर्वक पात्र दान देकर अत्यन्त हर्षित होते हैं।

श्रोत्रियाचार्यशिष्यर्षिशास्त्राध्यायाश्च वै गुरु :।
मित्रं धर्मी सहाध्यायी मरणे स्नानमादिशेत्॥ 123॥

श्रोत्रिय, आचार्य, शिष्य, ऋषि, शास्त्र-पाठक, गुरु, मित्र साधर्मी और सहाध्यायी (साथ पढ़ने वाला) इनकी मृत्यु होने पर स्नान करना चाहिए।

शव यात्रा :

मरण के बाद शीघ्रतापूर्वक शव का दाह संस्कार करना चाहिए। यदि मरण शाम को या रात्रि में होता है तो गो धूलि बेला के बाद शवदाह न करें। रात्रि में शव की छेदन क्रिया करें, जगह-जगह कपूर रखें। इससे जीवों से शव की सुरक्षा होती है। शव को ढक दे एवं रात्रि में दृढ़ एवं स्थिर चित्त वाले साहसी व्यक्ति जागरण करें। परिजनों को सांत्वना दें, संसार, शरीर और भोगों की नश्वरता का स्वरूप समझकर शोक कम करें। रोने से अशुभ कर्मास्रव होता है। प्रातः काल शवदाह क्रिया करें।

शोभमाने विमाने च शाययित्वा शवं दृढ़म्।
मुखाद्यङ्गं समाच्छाद्य वस्त्रैः स्त्रग्भिस्तदूर्ध्वतः॥ 136॥
तद्विमानं समाधृत्य शनैर्ग्रामाभिमस्तकः।
वोढारस्ते नयेयुस्तं नयेदेक उखानलम्॥ 137॥
विमानस्य पुरोदेशे गच्छेयुर्ज्ञातयस्ततः।
शवानुगमनं कुर्युः शेषाः सर्वे स्त्रियोऽपि च॥ 138॥

एक अच्छा विमान (ठठरी) बनाकर उसमें शव को मजबूती के साथ सुलावें। उसके मुख आदि सब अंग को वस्त्र से ढाकें। ऊपर पुष्पमालाएँ लपेटें।

चार जने उस विमान को धीरे से उठकार कंधे पर रखकर ले जावें, शव का मस्तक ग्राम की तरफ रखें। एक मनुष्य उखानल लेकर (हांडी में अग्नि रखकर) चले। कुटुम्बीजन विमान के आगे चलें। अन्य सब लोग विमान के पीछे-पीछे गमन करें।

दाह विधि :

शवदाह के लिए चार प्रकार की अग्नियों का उल्लेख है -

1. लौकिक अग्नि
2. औपासन अग्नि
3. संतापाग्नि
4. अन्वग्नि

लौकिक अग्नि :

घर में भोजन बनाने के लिए जो चूल्हे की अग्नि होती है,उसे लौकिक अग्नि कहते हैं। इससे सर्व साधारण के शव का दाह किया जाता है।

औपासन-अग्नि :

कुण्ड में अथवा मिट्टी चौकोन चबूतरे पर लौकिक अग्नि को स्थापन करें, उसमें शास्त्रों में बताये हुए द्रव्यों (धूप आदि) का

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः सर्वशान्तिं कुरु कुरु स्वाहा मंत्र से हवन करें।

ऐसा करने से लौकिक अग्नि औपासन अग्नि हो जाती है।

विशेष बुद्धिमान पुरुषों के शव संस्कार के लिए औपासन अग्नि काम में लाना चाहिए।

संतापाग्नि :

लौकिक अग्नि को पाँच बार दर्भ डाल-डालकर संतापित करें, अनन्तर उसे लकड़ियों में लगाकर प्रज्वलित करे, इसे संतापाग्नि कहते हैं। इसमें कन्या और विधवा के शव का दाह किया जाता है।

अन्वग्नि :

चूल्हे की अग्नि को मिट्टी की हांडी या अन्य किसी बर्तन में रखकर उसके ऊपर ईंधन (नारियल, गोला आदि) जलाना सो अन्वग्नि है। इसमें सभी स्त्रियों के शव का दाह किया जाता है।

मंत्र – **ॐ ह्रीं ह्रः काष्ठसच्चयं करोमि स्वाहा।**

(इस मंत्र को पढ़कर चिंता बनावें)

मंत्र – **ॐ ह्रीं ह्रौं झौं अ सि आ उ सा काष्ठे शवं स्थापयामि स्वाहा।**

इस मंत्र को पढ़कर शव को चिता पर स्थापित करें।

उखावह्निं समुद्दीप्य सकृदाज्यं प्रयोज्य च।
पर्युक्ष्य निक्षिपेत्पश्चाच्छनैस्तत्र परिस्तरे ॥147॥
ततः समन्तात्तस्योर्ध्वं निदध्यात्काष्ठासञ्चयम्।
सर्वतोऽग्नि समुज्वाल्य संप्लुष्यात्तत्कलेवरम् ॥148॥

अनन्तर उखाग्नि को प्रज्ज्वलित करे, उसमें एक बार घृत की आहूति दे और चारों तरफ जल सिंचन करें। पश्चात् उस अग्नि को उठाकर परिस्तर पर क्षेपण करे, उसके ऊपर लकड़ियाँ रखे, अनन्तर चिता के चारों ओर अग्नि प्रज्वलित कर उस शव को दग्ध करे।

मंत्र – **ॐ ॐ ॐ ॐ रं रं रं रं अग्निसन्धुक्षणं करोमि स्वाहा।**

(अनेनाग्निं सन्धुक्ष्य सर्पिरादिना प्रसिञ्च्य प्रज्वाल्य जलाशयं गत्वा स्नानं कुर्यात्।)

इस मंत्र का उच्चारण कर अग्नि जलावें, घृत आदि की आहुति दें, चिता में अग्नि लगावें। अनन्तर जलाशय पर जाकर स्नान करें।

अथोदकान्तमायान्तु सर्वे ते ज्ञातिभिः सह।
वोढारस्तत्र कर्ता च यान्तुं कृत्वा प्रदक्षिणम्॥ 149॥

सब जातीय बांधवों के साथ-साथ जलाशय के समीप जावें। परन्तु उनमें से विमान उठाने वाले और संस्कार कर्ता उस चिता की प्रदक्षिणा देकर जावें।

दुष्ट तिथि मरण प्रायश्चित :

तिथिवारर्क्षयोगेषु दुष्टेषु मरणं यदि।
मृतस्योत्थापनं चैव दीर्घकालादभूद्यदि॥ 151॥
यथ शक्ति जिनेज्या च महायन्त्रस्य पूजनम्।
शान्तिहोमयुतो जाप्यो महामन्त्रस्य तस्य वै॥ 152॥
आहारस्य प्रदानं च धार्मिकाणां शतस्य वा।
तद्र्धस्याथवा पंचविंशतेः प्रविधीयते ॥ 153॥
तीर्थस्थानानि वन्द्यानि नव वा सप्त पंच वा।
दुष्टतिथ्यादिमरणे प्रायाश्चित्तमिदं भवेत्॥ 154॥

दुष्ट तिथि, वार, नक्षत्र और योग में यदि किसी का मरण हो जाय और मृतक पुरुष को मरण के बाद बहुत देर जलाने के लिए ले जाय, तो उस दोष के परिहार के लिए कर्ता हाथ जोड़ प्रदक्षिणा देकर विद्वानों से प्रार्थना करे और प्रायश्चित लें। यथाशक्ति जिन भगवान की पूजा करें, महायंत्र की पूजा करें, शान्तिविधान और होम करें, महामंत्र का जाप्य दें। सौ, पचास अथवा पच्चीस धर्मात्माओं को आहार दें। नौ, सात या पाँच तीर्थों की वंदना करें। यह दुष्ट तिथि आदि में मरने का प्रायश्चित है।

कर्तुः प्रेतादिपर्यन्तं न देवादिगृहाश्रमः।
नाधीत्यध्यापनादीनि न ताम्बूलं न चन्दनम्॥ 179॥
न खट्वाशयनं चापि न सदस्युपवेशनम्।
न क्षौरं न द्विभुक्तिश्च न क्षीरघृतसेवनम्॥ 180॥
न देशान्तरयानं च नोत्सावागारभोजनम्।
न योषासेवनं चापि नाभ्यङ्गस्नानमेव च॥ 181॥
न मृष्टभक्ष्यसेवा च नाक्षादिक्रीडनं तथा।
नोष्णीषधारणं चैषा प्रेतदीक्षा भवेदिह॥ 182॥

मृत क्रिया करने वाला मरण दिन से लेकर शुद्धि दिन पर्यंत देवपूजा

आदि गृहस्थ के षट्कर्म न करे, धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन-अध्यापन न करें, तांबूल (पान) न खायें, तिलक न करें, पलंग पर न सोयें, सभा-गोष्टी में न बैठें, क्षौर कर्म न करावें, एक बार भोजन करें, दूध-घी न खायें, अन्य देश-ग्राम को न जायें, सामूहिक भोजन न करें, स्त्री सेवन न करें, तैल की मालिश कर स्नान न करें, मिष्ठान भक्षण न करें, पांसे आदि से न खेलें, चौपड़ शतरंज आदि न खेलें और सिर पर पगड़ी साफा व टोपी वगैरह न लगायें। यह सब प्रेत (शव) दीक्षा है।

यावन्न क्रियते शेषक्रिया तावदिदं व्रतम् ।
आचार्य कर्तुरेकस्य ज्ञातीनां त्वादशाहतः ॥183॥

जब तक बारहवें दिन की शेषक्रिया न कर लें, तब तक दाहकर्ता उक्त व्रतों का पालन करे तथा अन्य कुटुम्बीजन दशवें दिन तक इन व्रतों को पालें।

मृतकक्रिया कर्ता :

कर्ता पुत्रश्च पौत्रश्च प्रपौत्रः सहजोथवा।
तत्सन्तानः सपिण्डानां सन्तानो बा भवेदिह॥184॥
सर्वेषामष्यभावे तु भर्ता परस्परम्।
तत्राप्यन्यतराभावे भवेदेकः सजातिकः॥185॥
उपनीतिविहीनोऽपि भवेत्कर्ता कथच्चन।
स चाचार्योक्तमन्त्रान्ते स्वाहाकारं प्रयोजयेत्॥186॥

मृतकक्रिया का कर्ता सबसे पहले पुत्र है। पुत्र के अभाव में पोता, पोते के अभाव में भाई, भाई के अभाव में उसके लड़के, उनके भी अभाव में सपिंडों (जिनको दश दिन तक का सूतक लगता है ऐसे चौथी पीड़ी तक के सगोत्री बांधवों) की संतान है। इन सभी का अभाव हो तो पति-पत्नि परस्पर एक दूसरे के संस्कारकर्ता हो सकते हैं। इनका भी अभाव हो अर्थात् पुरुष के पत्नी न हो और स्त्री के पति न हो तो उनकी जाति का कोई एक पुरुष हो सकता है। जिसका उपनयन संस्कार नहीं हुआ हो वह भी कथचित् कर्ता हो सकता है, परंतु सजाति होना चाहिए। आचार्य मंत्रोच्चारण अंत में सिर्फ 'स्वाहा' शब्द का प्रयोग करें - मंत्रोच्चारण न करें।

अस्थिसंचय :

तदाऽस्थिसञ्चयश्चापि कुजवारे निषिध्यते ।
तथैव मन्दवारे च भार्गवादित्ययोरपि ॥179॥
अस्थीनि तानि स्थाप्यानि पर्वतादिशिलाविले ।
प्रकृत्यवधिखातोर्व्यामथवा पौरुषावटै ॥190॥

मंगलवार, शनिवार, शुक्रवार और रविवार को अस्थिसंचय न करें, किन्तु सोमवार, बुधवार और बृहस्पतिवार को करें। उन अस्थियों को लाकर पर्वत आदि की शिला के नीचे या जमीन में पुरुष प्रमाण पाँच हाथ या साढ़े तीन हाथ गहरा गढ़ा खोदकर उसमें रखें।

श्मशान क्रिया के बाद :

श्मशान से लौटने के बाद गृहस्थ सम्पूर्ण स्नान करें वस्त्र धोएँ। यदि जनेऊ (यज्ञोपवीत) पहनकर गये हों तो उसे उतार दें एवं स्नान कर नया धारण करें। पश्चात् मंदिर दर्शन करने जायें, किन्तु वहाँ किसी वस्तु का स्पर्श न करें। मृतक के परिवार जनों को शोक सभा आदि का आयोजन कर सान्त्वना दें। बारह दिन का सूतक समाप्त होने के बाद मृतक के परिजन शवदाह आदि दोष के प्रायश्चित रूप में शान्ति विधान करें। मिथ्यात्व पोषक क्रियायें न करें।

शान्ति विधान मृत आत्मा की शान्ति हेतु नहीं अपितु शव दाह आदि क्रियाओं से जो हिंसादि दोष लगे उनके प्राश्चित स्वरूप किया जाता है।

चरण चिह्न :

सुप्रसिद्धै मृते पुंसि संन्यासध्याननयोगतः ।
तद्धिम्बं स्थापयेत् पुण्यप्रदेशे मण्डपादिके॥ 195॥

संन्यास विधि एवं ध्यान समाधि से कोई प्रसिद्ध पुरुष मरे तो पुण्य-स्थान में मंडल वगैरह बनवाकर उसमें उसके प्रतिबिम्ब (चरण चिह्न आदि) की स्थापना करें।

वैधव्य-दीक्षा :

मृते भर्तरि तज्जाया द्वादशह्नि जलाशये ।
स्त्रात्वा वधूम्यः पच्चभ्यस्तत्र दद्यादुपायनम् ॥196॥
भक्ष्य-भोज्यफलैर्गन्ध-वस्त्रपुष्पपणैस्तथा ।
ताम्बूलैरवतंसैश्च तदा कल्प्यमुषायनम् ॥ 197॥
विधवायास्ततो नार्या जिनदीक्षासमाश्रयः ।
श्रेयानुतस्विद्वैधव्यदीक्षा वा गृह्यते तदा ॥ 198॥

पति का परलोकवास हो जाने पर उसकी स्त्री बारहवें दिन जलाशय पर स्नानकर पाँच स्त्रियों को उपायन-भेंट दें। उत्तम भोजन, फल, गंध, वस्त्र, पुष्प, नकद रुपया-पैसा, वगैरह देना उपायन है। इसके अनन्तर यदि वह विधवा स्त्री जिन-दीक्षा-आर्यिका या क्षुल्लिका के व्रत ग्रहण करे तो सबसे उत्तम है, अथवा वैधव्य-दीक्षा ग्रहण करे।

वैधव्य अवस्था के कर्त्तव्य :

तत्र वैधव्यदीक्षायां देशव्रतपरिग्रहः ।
कण्ठसूत्रपरित्यागः कर्णभूषणवर्जनम् ॥ 199॥
शेषभूषनिवृर्त्तिश्च वस्त्रखण्डान्तरीयकम् ।
उत्तरीयेण वस्त्रेण मस्तकाच्छादनं तथा ॥ 200॥
खट्वाशश्याञ्जनालेपहारिद्रप्लववर्जनम् ।
शोकाक्रन्दनिवृत्तिश्च विकथानां विवर्जनम् ॥ 201॥
त्रिसन्ध्यं देवतास्तोत्रं जपः शास्त्रश्रुतिः स्मृतिः ।
भावना चानुप्रेक्षाणां तथात्मप्रतिभावना ॥ 203॥
पात्रदानं यथाशक्ति चैकभक्तमगृद्धितः ।
ताम्बूलवर्जनं चैव सर्वमेतद्विधीयते ॥ 204॥

वैधव्यदीक्षा में वह स्त्री देशव्रत ग्रहण करे, गले में पहनने के मंगल-सूत्र का त्याग करें, कानों में कोई आभूषण न पहनें, बाकी के और गहने भी न पहने, शरीर पर पहनने और ओढ़ने के दो वस्त्र रखें, पलंग पर न सोयें, आँखों में काजल न लगावें, हल्दी वगैरह का उबटनकर स्नान न करें, शोकपूर्ण रुदन न करें, विकथाओं का त्याग करें, सुबह, दोपहर और शाम को स्तोत्रों का पाठ

करें, जाप दें, शास्त्र सुनें, उनका चिंतन करें, बारह भावना भायें, आत्मभावना भायें, यथाशक्ति पात्रदान दें, लोलुपता रहित एक बार भोजन करें, तांबूल–पान न खायें।

पति के देहावसान के तीसरे दिन स्नान कर परिवार की स्त्रियों के साथ जिनमंदिर में दर्शनकर बारह भावनाओं का चिन्तन करके मन को शोक रहित कर स्थिर भाव से जिनभक्ति करें। बारहवें दिन बाद नियम से जिनपूजन स्वाध्याय आदि कर संसार, शरीर और भोगों से उदासीन रह कर संयमी जीवन व्यतीत करें एवं संतुलित और सात्त्विक भोजन करें।

सावधानियाँ

1. शवदाह हमें शीघ्र करना चाहिए, क्योंकि विलम्ब करने से शव में असंख्यात जीवों की उत्पत्ति होती है।
2. लकड़ी सूखी हो, घुनी न हो।
3. विमान मजबूत बनाया गया हो।
4. नारियल, गोला फोड़ कर उपयोग करें।
5. साधु के शव को स्थिर रखने के लिए मजबूती से बाँधें।
6. रस्सी के बंधन सामने से देखने में नहीं आवें, इसका ध्यान अवश्य रखें।
7. रात्रि के समय शव पर कपूर अवश्य रखें।
8. शवदाह स्थल की पूर्ण सुरक्षा करें, जिससे अव्यवस्था न हो सके।
9. रुदन, शोक न करें, इससे असाता वेदनीय कर्म का आस्रव होता है।
10. वैराग्य वर्धक गीतों के माध्यम से वातावरण प्रशस्त बनायें।
11. तीसरे दिन, शुद्धि के पश्चात् शोक संतप्त परिवार के यहाँ उनके साथ सामूहिक रूप से वैराग्य वर्धक भावना आदि का पाठ करें।
12. शोक संवेदना देने वालों के साथ बैठकर रागादिक के पूर्व से स्मरणों का कथन न करें।
13. सद्य विधवा तीसरे दिन पश्चात् देव दर्शन एवं तेरहवें दिन पूजन, स्वाध्याय एवं आहारदान आदि कार्य करें।

परिशिष्ट - 1

प्रश्न-उत्तर

1. पंचक क्या है ?

ज्योतिषशास्त्रानुसार सत्ताइस नक्षत्रों को उनके स्वभाव, गुणधर्म आदि के आधार से विभाजित किया गया है। जैसे - पंचक संज्ञक, मूलसंज्ञक, ध्रुव संज्ञक, चर संज्ञक, उग्र संज्ञक, मिश्र संज्ञक, लघु संज्ञक, मृदु संज्ञक, तीक्ष्ण संज्ञक, अधोमुख संज्ञक, उर्ध्वमुख संज्ञक तिर्यङ्मुख संज्ञक, दग्ध संज्ञक।

पंचक संज्ञक - सत्ताईस नक्षत्रों में अन्त के पाँच नक्षत्र पंचक संज्ञक होते हैं - इनमें कार्य करने से पाँच गुणित फल देते हैं, अतः इनमें अशुभकार्य वर्जित हैं।

2. पंचक में पुतले आदि देने का प्रयोजन ?

भगवती आराधना की विजयोदया टीका (अपराजित सूरि कृत) में 1982 और 1983 गाथा की टीका करते हुए लिखा है कि अल्प नक्षत्र में यदि क्षपक का मरण होता है तो सबका कल्याण होता है। मध्यम नक्षत्र में मरण होता है तो शेष साधुओं में से एक का मरण होता है। महानक्षत्र में मरण होने से दो साधुओं का मरण होता है -

जघन्य (अल्प) नक्षत्र - शतभिषा, भरणी, आर्द्रा, स्वाति, अश्लेषा, ज्येष्ठा।

उत्कृष्ट नक्षत्र - रोहणी, विशाखा, पुनर्वसु, उत्तरा फाल्गुनी, उत्तरा भाद्रपद, उत्तराषाढ़ा, शेष नक्षत्र मध्यम हैं।

जघन्य (अल्प) नक्षत्र पन्द्रह मुहुर्त तक रहते हैं। तीस मुहूर्त तक मध्यम और पैंतालीस मुहुर्त तक उत्कृष्ट नक्षत्र होते हैं।

संघ की रक्षा के अभिप्राय से तृणों का पुतला बना कर मध्यम नक्षत्र में

मरण के समय एक पुतला एवं उत्तम नक्षत्र में मरण के समय दो पुतला शव के साथ दहन करना चाहिए।

पंचक नक्षत्रों में मरण से पुतले दहन का उल्लेख नहीं मिलता है।

3. पुतले देने की विधि ?

भगवती आराधना की अपराजित सूरिकृत विजयोदया टीका में 1985 से गाथा 1986 तक की टीका में उल्लेख है कि मृतक के पास में पुतला स्थापित कर उच्चस्वर में घोषणा करे कि मैंने दूसरे के स्थान पर दूसरा स्थापित किया है जिसके स्थान में यह पुतला स्थापित किया है वह चिरकाल तक जीवित रहकर तपस्या करें, यह एक पुतला देने का विधान है। दो पुतले स्थापित करने पर तीन बार घोषणा करें कि मैंने दूसरा और तीसरा पुतला स्थापित किया है ये दोनों जिसके बदले में स्थापित किये हैं, वे दोनों साधु चिरकाल तक जीवित रहकर तप करें।

यदि पुतला बनाने के लिए तृण न हो तो ईंट, पत्थर आदि के चूर्ण से अथवा केशर क्षार वगैरह से ऊपर ककार लिखकर उसके नीचे यकार लिखें। संघ की शान्ति के लिए यह कार्य अवश्य करना चाहिए।

4. क्या इसमें भाव या द्रव्य हिंसा है ?

इसमें संकल्पी हिंसा का दोष नहीं लगता, यह तो एक साथ दो या तीन शवों का दाह संस्कार है। इसमें जीवों की हिंसा का न भाव है और न ही हिंसात्मक क्रिया है। इसमें मात्र अन्य अतिरिक्त शवों का दाह संस्कार है।

5. धार्मिक अनुष्ठान की परम्पराएँ ?

मृत्यु के बाद अनुष्ठान की परम्परा का उद्देश्य मृत जीव से नहीं अपितु शव दाह आदि में हुए आरम्भ, हिंसा आदि दोषों के निराकरण हेतु किया गया प्राश्यचित है। मृत्यु का सूतक बारह दिन का है, अतः तेरहवें दिन पूजन का अधिकार प्राप्त होता है। इसमें सबसे पहले प्रायश्चित रूप में विधान आदि करते हैं। मृत आत्मा की शान्ति के लिए नहीं।

6. मरने के बाद पत्नि आदि को मंदिर ले जाने की व्यवस्थाएँ ?

पति की मृत्यु के तीसरे दिन विधवा को सजातीय महिलाऐं दु:ख को कम करने, मन को स्थिर करने, परिणामों को निर्मल करने, जिनेन्द्र भगवान की शरण में पूजा, भक्ति, आराधना स्वाध्याय आदि में संलग्न करती है।

7. तीसरे दिन खारी/उठावना की परम्परा क्यों ?

गोम्मटसार जीवकाण्ड में अग्नि कायिक जीव की आयु तीन दिन कही गई है। शव जलाने के बाद तीन दिन में अग्नि स्वयं शान्त हो जाती है अत: तीसरे दिन श्मशान में जाकर राख को विसर्जित करते है एवं हड्डियों को गड्ढे आदि में डाल देते हैं। वापस घर आकर स्नान आदि के द्वारा शुद्धि करते हैं।

8. तीसरे दिन मंदिर ले जाने की परम्परा का रहस्य ?

शोक को कम करने एवं पुन: दैनिक क्रियाओं को सुचारुरूप से संचालित करने, समाज के प्रमुख लोग शोकाकुल परिवार को मंदिर ले जाते हैं शोक सभा करते हैं एवं दुकान, प्रतिष्ठान खुलवाकर, प्रारम्भ करवाते हैं। घर की शुद्धि हो जाने से सामाजिक कार्य आरम्भ हो जाता है। लोग परस्पर में भोजन आदि करते हैं जिससे शोक कम होता है।

9. मृत्यु होने पर रिश्तेदार परिचित आदि के आने की परम्परा क्यों ?

मृत्यु के बाद शोक में डूबे परिजनों को सांत्वना देने, सहानुभूति प्रकट करने एवं संसार की असार का वर्णन करते हुए मन को स्थिरता प्रदान करने रिश्तेदार, समाज के व्यक्ति एवं परिचित जन आते हैं।

10. मृत्यु के तीसरे दिन पुत्रादि के मुण्डन की परम्परा क्यों ?

जैनागम में मृत्यु के उपरान्त पुत्रादि के मुण्डन की परम्परा का वर्णन त्रैवर्णाचार ग्रन्थ के सिवाय अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलता है। मुण्डन की परम्परा क्षेत्रीय परम्परा है यह मात्र बुन्देलखण्ड एवं तमिलनाडु आदि के जैनों में ही देखने मिलती है। उत्तर भारत के दिल्ली आदि क्षेत्रों में मुण्डन की परम्परा नहीं है। यह परम्परा वैदिक सम्प्रदाय से प्रेरित प्रतीत होती है।

11. मृत्यु भोज न करें तो क्या आये हुए मेहमानों को भूखा रखें ?

आये हुए मेहमानों को भोजन कराने में कोई दोष नहीं है किन्तु उसे अनिवार्य करना, कमजोर परिस्थिति वालों से जबरदस्ती करके भोजन करवाना एवं भोजन से मृत आत्मा को शान्ति मिलती है के उद्देश्य से भोजन कराना दोष है।

12. शव को आग बेटा ही क्यों लगाता है ?

इसमें कोई धार्मिक कारण नहीं है। चिता को आग लगाने वालों का उल्लेख श्री सोमसेन ने त्रिवर्णाचार में किया है। इसमें सामाजिक व्यवस्था के अनुसार पिता का पुत्र निकट संबंधि होता है। वह जिम्मेदार व्यक्ति है। इससे समाज उसे ही यह अधिकार देती है। जिससे शवदाह के बाद कोई विवाद न हो सके त्रिवर्णाचार में पुत्र के अभाव में अन्य सम्बन्धियों को भी अधिकार दिया है।

13. बेटे को पगड़ी बाँधने का प्रयोजन ?

पिता घर का संचालन करता था, सभी जिम्मेदारियाँ उसकी थी, पिता के अभाव में ज्येष्ठ पुत्र को समाज मान्यता प्रदान करती हुई घर के संचालन का भार पगड़ी बाँधकर सौंपती है। यह सामाजिक व्यवस्था है। पिता के बाद पुत्र अपने कर्त्तव्य एवं जिम्मेदारियों के प्रति सजग रहता है।

14. पति के मरने के बाद पत्नी के आभूषणादि उतारने का प्रयोजन ?

पति वियोग के बाद पत्नी को अपना जीवन धार्मिक बनाते हुए पूर्ण ब्रह्मचर्य से व्यतीत करना होता है। ब्रह्मचारी को शृंगारादि नहीं करने का विधान है, अतः विधवा को शृंगार नहीं करना चाहिए। पत्नि पति के लिए ही शृंगार करती है पति के अभाव में शृंगारादिक करने से ब्रह्मचर्य सुरक्षित नहीं रह सकता है।

15. मृत्यु उपरान्त प्रथम त्यौहार पर रिश्तेदारों के आने, मिठाई लाने आदि का प्रयोजन क्या ?

प्रियजन की मृत्यु के उपरान्त वर्ष में आने वाले त्यौहारों पर खुशियों का वातावरण बनते ही प्रियजन की याद आती है। उसके अभाव में शोक का

वातावरण बन जाता है बिछुड़े प्रियजन की याद आती है, अतः पकवान, मिष्ठानादि नहीं बनते बच्चे आदि भी इससे प्रभावित होते हैं। ऐसी स्थिति में रिश्तेदार मिष्ठान लेकर आते हैं और शोकमय वातावरण को खुशियों से भरते हैं।

16. मृत्यु भोज की परम्परा कब से और क्यों ?

मृत्युभोज की परम्परा अत्यन्त प्राचीन प्रतीत नहीं होती है। इसका दसवीं शताब्दी पूर्व के ग्रन्थों में उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। यह परम्परा अन्य परम्पराओं का अंधानुकरण मात्र है, जिसे कालान्तर में लोगों ने अनिवार्य करा दिया जो बाद में विकृत होकर धर्म का आवश्यक अंग बन गया। जिसका दुष्परिणाम समाज के गरीब वर्ग ने कष्ट से सहन किया।

17. मृत्युभोज से हानि व लाभ ?

मृत्युभोज को धार्मिक क्रिया मानना मिथ्यात्व का पोषण है एवं शोक संवेदना के लिए आये लोगों को भोजन कराना एक व्यवस्था है। मृत्यु के उपरान्त संवेदना प्रकट करने कोई न कोई आता रहता है। लोगों के आने से घर में अव्यवस्था होती है और प्रतिदिन आने वाला व्यक्ति मरे व्यक्ति का स्मरण दिलाता है जिससे दुःख होता रहता है। अतः एक दिन निश्चित कर दिया जाता है जिससे सभी एक दिन ही आकर शोक सभा कर संवेदना प्रकट करते हैं और मृतक के परिजन आने वालों के भोजन आदि की व्यवस्था करते हैं, मृत्युभोज एक व्यवस्था है धार्मिक क्रिया नहीं।

18. शव को ले जाते समय अर्थी किस प्रकार रखें ?

शव को ले जाते समय शव का सिर गाँव की ओर होना चाहिए मुनि राजों के शव की पीठ गाँव की ओर हो ऐसा उल्लेख भगवती आराधना, मरणकण्डिका आदि ग्रन्थों में है।

19. जहाँ प्राण निकलते है वहाँ पर दीपक जलाने, चौक पूरने (थाली में हाथ रखने) की परम्परा क्यों ?

जहाँ प्राण निकलते हैं वहाँ की भूमि नकारात्मक ऊर्जा देने लगती है,

लोग शोक करते हैं, जिससे वातावरण दूषित हो जाता है। वहाँ की ऊर्जा को सकारात्मक करने एवं वातावरण को शुद्ध करने के उद्देश्य से दीपक जलाया और चौक बनाया जा सकता है किन्तु मृत व्यक्ति की आत्मा की शान्ति के लिए किये गये समस्त कार्य मिथ्यात्व के पोषक हैं। जैनागम मृतात्मा की शान्ति को स्वीकार नहीं करती वह शोक संतृप्त परिजनों के मन की शान्ति का कारण है।

20. शोक की परम्परा 6 माह ही क्यों ?

प्रियजन के वियोग से शोक होता है। मृतक से जितना राग होगा, शोक भी उतना ज्यादा होगा। राग मोह का रूप है। शोक नोकषाय है। राग भी कषायमय ही है यदि यह स्थिति छह माह तक रही तो वह अनन्तानुबन्धी रूप हो जावेगी, सम्यक्त्व की हानि करेगी, भव-भव में दुखी करेगी, इसलिए शोक को अधिकतम छह माह ही कहा है अधिक नहीं।

21. शव यात्रा में मखाने एवं पैसे क्यों फेंके जाते हैं ?

कोई कौतूहल प्रिय व्यन्तरादि शव में प्रवेश कर उपद्रव न करें इससे शव के ऊपर मखाने आदि फेंकते हैं।

22. चिता में कंडे का प्रयोग न करें तो शव दाह कैसे हो ?

चिता में लकड़ी के साथ सूखे नारियल फोड़कर गोला का उपयोग कर शव जलाया जा सकता है। कंडा जलाने से संख्यात जीवों की विराधना होती है।

23. श्मशान में भस्म विसर्जन के उपरान्त शवदाह के स्थान पर जल, दूध, अनाज, नमक, दीपक आदि क्यों रखे जाते हैं ?

शवदाह के स्थान की भूमि उर्वरा रहित हो जाती है। नकारात्मक ऊर्जा उत्पन्न होने लगती है। अतः उसे उपजाऊ एवं सकारात्मक ऊर्जा को जागृत करने के लिए यह क्रिया की जाती है। इसमें कोई धार्मिक कारण नहीं है। उस भूमि में क्षार की अधिकता होने से लवण (नमक) द्वारा क्षारत्व को समाप्त करते हैं।

24. शवयात्रा में शव के सिर को ढककर ले जाना चाहिए या खुला

रखकर ?

शव के सिर को ढकना चाहिए। यदि चेहरा शान्त एवं व्यवस्थित हो तो खुला रख सकते हैं। विकृत या वीभत्स होने पर ढककर ही ले जाना चाहिए।

25. क्या हड्डियों को नदी आदि में प्रवाहित करने का विधान है ?

हड्डियों को नदी आदि में प्रवाहित नहीं करना चाहिए। हड्डियों में तेजक्षार होता है, जिससे पानी में रहने वाले जीवों की विराधना होती है। धरती में गड्ढाकर हड्डियाँ गाड़ देना चाहिए।

26. मुनि के शव के अभिषेक का प्रमाण क्या है ?

मुनि के शव के अभिषेक का त्रैवर्णिकाचार के अलावा (मूल श्लोक में नहीं) आगम में कोई भी प्रमाण नहीं मिलता है। जहाँ अभिषेक किया जाता है वह मात्र परम्परा है। (भट्टारक धवल कीर्ति, अरिहंतगिरि, तिरूमलै)

27. मुनियों को शव यात्रा या शव दाह में सम्मिलित होना चाहिए या नहीं ?

शव यात्रा में जा सकते हैं। शवदाह में नहीं, क्योंकि शवदाह में होने वाली हिंसा की अनुमोदना का दोष लगता है।

28. मुनि के शव का अभिषेक करने में दोष क्या है ?

मृत्यु के उपरान्त शव में अन्त मुर्हूत बाद ही असंख्यात जीवों की उत्पत्ति होना प्रारम्भ हो जाती है जो गुणित रूप में अनवरत होती है। शवदाह में जितनी देरी होती है, उतने ज्यादा जीवों की हिंसा होती है। अतः आचार्यों ने शीघ्र ही शव दाह करने का निर्देश दिया है। अभिषेक कराने बोलियाँ लगाने एवं अभिषेक की तैयारी करने में बहुत समय लग जाता है जो जीवों की उत्पत्ति का कारण है।

29. जिस प्रकार साक्षात् अरिहंत का अभिषेक नहीं होता किन्तु उनके बिम्ब का अभिषेक होता है उसी प्रकार साक्षात् मुनि का अभिषेक नहीं होता किन्तु उनके निर्जीव शव के अभिषेक में क्या दोष है ?

मूर्ति निर्जीव अर्थात् अचित्त होती है जबकि मृतशरीर (शव) सचित्त होता है इसके अभिषेक में लगने वाले समय में उस शव में असंख्यात जीवों की उत्पत्ति हो जाती है। आगम में शव के अभिषेक एवं संस्कारादि का उल्लेख नहीं है।

30. तेरहवीं करने का क्या औचित्य है, तेरहवें दिन ही क्यों करना चाहिए ?

शवदाह आदि से होने वाली हिंसा, शोक आदि दोष के निराकरण एवं 12 दिन तक सूतक होने से पूजनादि छूट जाने से प्रायश्चित स्वरूप शान्ति विधान किया जाता है।

सूतक में पूजन न करने का निर्देश 12 दिन का है अर्थात् बारह दिन बाद पूजन करने का अधिकार प्राप्त होता है अतः पूजन करने से पूर्व दोषों के निराकरण के लिए प्रायश्चित स्वरूप तेरहवें दिन शान्ति विधान करना चाहिए।

31. साधु की शव यात्रा में जाने पर क्या श्रावक को एक दिन का सूतक लगेगा?

सूतक का सम्बन्ध साधु या श्रावक से नहीं, किन्तु श्मशान में शव दाह से होने वाली हिंसादि का प्रायश्चित, अशुचिता एवं मन में उत्पन्न हुए नकारात्मक चिन्तन की अशुद्ध अवस्था से है जिस में मंदिर की पवित्रता दूषित होती है। अतः साधु की शव यात्रा में जाने वाले श्रावक को एक दिन का सूतक मानना चाहिए वह स्नान मात्र से पवित्र होता है। उसे वस्त्र सहित स्नान करना चाहिए। सूतक चौबीस घंटे का नहीं अपितु एक दिन अर्थात् सूर्योदय तक माना जाता है। मन की स्थिरता एवं मन की शुद्धि के लिए सूतक अवश्य मानना चाहिए।

परिशिष्ट – 2

शव विसर्जन से सम्बन्धित चित्रावली

4×4×1 हाथ गड्ढा

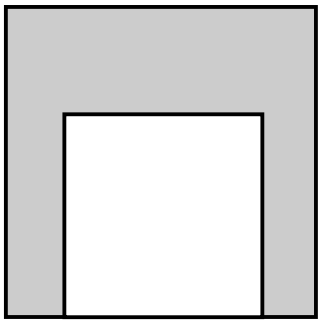

गड्ढे के चारों ओर मजबूत बांस
(भीड़ रोकने हेतु) लगाएँ

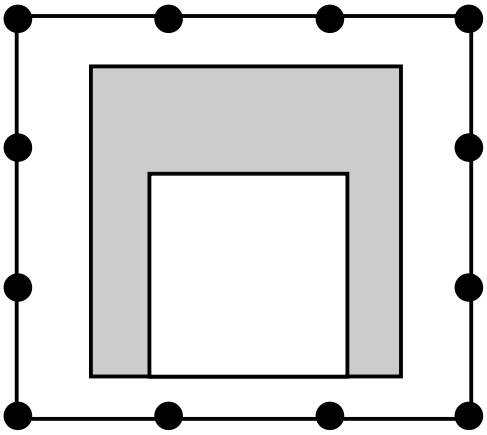

अग्नि कुण्ड संरचना

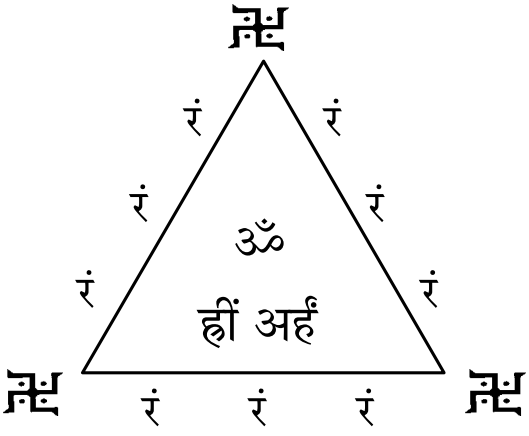

अग्नि कुण्ड हल्दी से बनायें

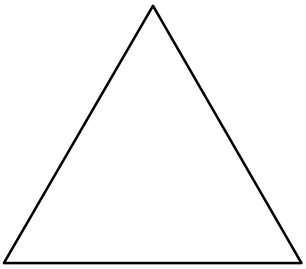

अशुभ नक्षत्र दोष परिहार के लिए
मसूर दाल से काय लिखें

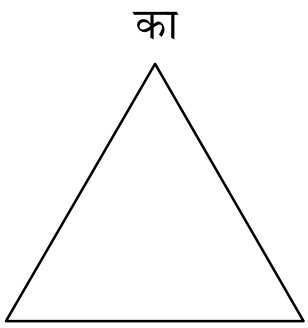

उल्टे स्वस्तिक चावल आटा से बनायें

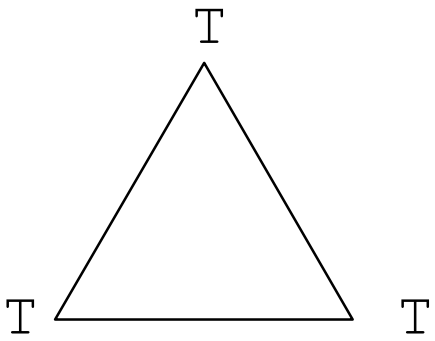

ॐ ह्रीं अर्हं लिखें

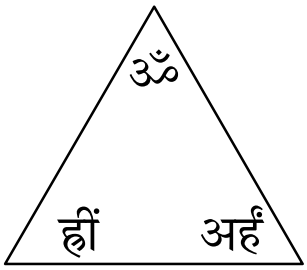

चार खूंटी गाड़ें

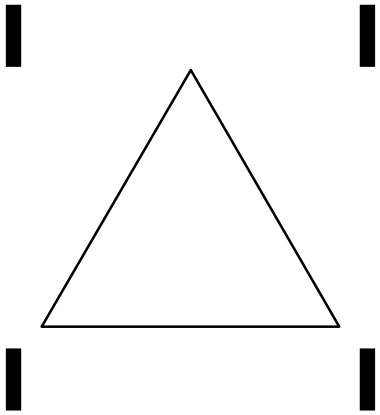

चार खूंटी से मौली बाँधें

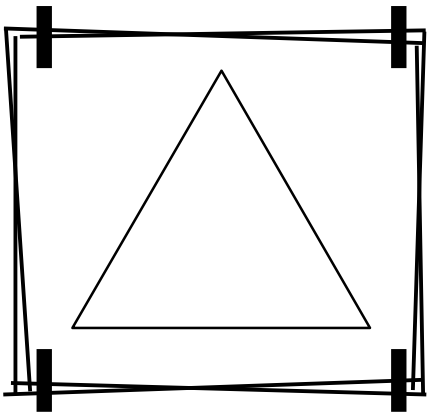

चंदन लकड़ी बिछायें

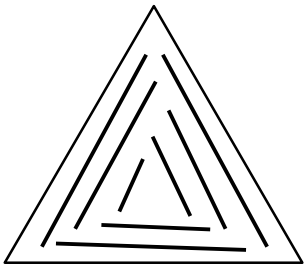

परिशिष्ट -3

1. समाधिमरण पाठ

(1)

गौतम स्वामी वन्दों नामी, मरण समाधि भला है।
मैं कब पाऊँ निशदिन ध्याऊँ, गाऊँ वचन कला है॥
देव-धर्म-गुरु प्रीति महादृढ़, सप्त व्यसन नहिं जाने।
त्यागे बाइस अभक्ष्य संयमी, बारह व्रत नित ठाने॥

(2)

चक्की उखरी चूलि बुहारी, पानी त्रस न विराधे।
बनिज करै परद्रव्य हरे नहिं, छहों करम इमि साधे॥
पूजा शास्त्र गुरुन की सेवा, संयम तप चहुँदानी।
पर-उपकारी अल्प-अहारी, सामायिक-विधि ज्ञानी॥

(3)

जाप जपै तिहूँ योग धरै दृढ़, तन की ममता टारै।
अन्त समय वैराग्य सम्हारै, ध्यान समाधि विचारै॥
आग लगै अरु नाव डुबै जब, धर्म विघन है आवे।
चार प्रकार अहार त्यागि के, मंत्र सु मन में ध्यावै॥

(4)

रोग असाध्य जहाँ बहु देखै, कारण और निहारे।
बात बड़ी है जो बनि आवै, भार भवन को डारै॥
जो न बनै तो घर में रह करि, सबसों होय निराला।
मात पिता सुत तिय को सौंपे, निज परिग्रह अहि-काला॥

(5)

कछु चैत्यालय कछु श्रावकजन, कछु दुखिया धन देई।
क्षमा क्षमा सबहीसों कहिके, मन की शल्य हनेई॥
शत्रुनसों मिलि निज कर जोरै, मैं बहु करि है बुराई।
तुमसे प्रीतम को दुख दीने, ते सब बक सो भाई॥

(6)

धन धरती जो मुखसों मांगै, सबको दे सन्तोषै।
छहों काय के प्राणी ऊपर, करुणा भाव विशेषै॥
ऊँच नीच घर बैठ जगह इक, कछु भोजन कछु पैले।
दूधाधारी क्रम क्रम तजिके, छाँछ अहार पहेलै॥

(7)

छाँछ त्यागि के पानी राखै, पानी तजि संथारा।
भूमि माँहिं फिर आसन माँडै, साधर्मी ढिग प्यारा॥
जब तुम जानो यह न जपै है, तब जिनवाणी पढ़िये।
यों कहि मौन लियौ संन्यासी, पञ्च परमपद गहिये॥

(8)

चौ आराधन मनमें ध्यावै, बारह भावन भावै।
दश-लक्षणमय उर धर्म विचारै, रत्नत्रय मन ल्यावै॥
पैंतीस सोलह षट् पन चौ दुइ, एक वरन विचारै।
काया तेरी दुख की ढेरी, ज्ञानमयी तू सारै॥

(9)

अजर अमर निज गुणसों पूरै, परमानन्द सुभावै।
आनन्दकन्द चिदानन्द साहब, तीन-जगतपति ध्यावै॥
क्षुधा-तृषादिक होईं परीषह, सहै भाव सम राखै।
अतीचार पाँचों सब त्यागै, ज्ञान-सुधा-रस चाखै॥

(10)

हाड़ मांस सब सूखि जाय जब, धरम लीन तन त्यागै।
अद्भुत पुण्य उपाय सुरगमैं, सेज उठै ज्यों जागै॥
तहँ तैं आवैं शिव-पद पावै, विलसै सुक्ख अनन्तो।
'द्यानत' यह गति होय हमारी, जैनधरम जैवन्तो॥

2. समाधि भावना

दिनरात मेरे स्वामी मैं भावना ये भाऊँ।
देहान्त के समय में तुमको न भूल जाऊँ॥

शत्रु अगर कोई हो संतुष्ट उनको कर दूँ।
समता का भाव धर कर सबसे क्षमा कराऊँ॥

त्यागूं आहार पानी औषध विचार अवसर।
टूटे नियम न कोई दृढ़ता हृदय में लाऊँ॥

जागें नहीं कषायें नहिं वेदना सतावे।
तुमसे ही लौ लगी हो दुर्ध्यान को भगाऊँ॥

आतम स्वरूप अथवा आराधना विचारूँ।
अरहंत सिद्ध साधू रटना यही लगाऊँ॥

धर्मात्मा निकट हों चरचा धर्म सुनावें।
वह सावधान रक्खे गाफिल न होने पाऊँ॥

जीने की हो न वाञ्छा मरने की हो न इच्छा।
परिवार मित्र जन से मैं मोह को हटाऊँ॥

भोगे जो भोग पहले उनका न होवे सुमरन।
मैं राज्य सम्पदा या पद इन्द्र का न चाहूँ॥

रत्नत्रय का पालन हो अंत में समाधि।
'शिवराम' प्रार्थना यह, जीवन सफल बनाऊँ॥

3. समाधिमरण पाठ

(पं. सूरचन्दजी)

नरेन्द्र छन्द

(1)

बन्दौं श्री अरहंत परम गुरु , जो सबको सुखदाई।
इस जगमें दुख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई॥
अब मैं अरज करूँ प्रभु तुमसे, कर समाधि उर माँहीं।
अन्त समय में यह वर मागूँ, सो दीजै जगराई॥

(2)

भव-भव में तनधार नये मैं, भव-भव शुभ संग पायो।
भव-भव में नृप-ऋद्धि लई मैं, मात-पिता सुत थायो॥
भव-भव में तन पुरुष तनों धर, नारी हूँ तन लीनों।
भव-भव में मैं नपुंसक हूवो, आतम-गुण नहिं चीनो॥

(3)

भव-भव में सुर-पदवी पाई, ताके सुख अति भोगे।
भव-भव में गति नरक-तनी धर, दुख पायो विध-योगे॥
भव-भव में तिर्यंच योनि धर, पाये दुख अति भारी।
भव-भव में साधर्मीजन को, संग मिलो हितकारी॥

(4)

भव-भव में जिनपूजन कीनी, दान सुपात्रहिं दीनो।
भव-भव में समवसरण मैं, देख्यो जिन-गुण भीनो॥
एती वस्तु मिली भव-भव में, सम्यक् गुण नहिं पायो।
ना समाधि-युत मरण कियो मैं, तातैं जग भरमायो॥

(5)

काल अनादि भयो जग भ्रमते, सदा कुमरणहिं कीनो।
एक बार हू सम्यक् युत मैं, निज आतम नहिं चीनो॥
जो निज पर को ज्ञान होय तो, मरण समय दुख काई।
देह विनाशी मैं निजभासी, ज्योति स्वरूप सदाई॥

(6)

विषय कषायनके वश होकर, देह आपनो जानो।
कर मिथ्या सरधान हिये विच, आतम नाहिं पिछानो॥
यों क्लेश हिय धार मरण कर, चारों गति भरमायो।
सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चरन ये, हिरदे में नहिं लायो॥

(7)

अब या अरज करूँ प्रभु सुनिये, मरण समय यह मांगों।
रोग जनित पीड़ा मत होहू, अरु कषाय मत जागो॥
ये मुझ मरण समय दुखदाता, इन हर साता कीजे।
जो समाधि-युत मरण होय मुझ, अरुमिथ्या-गद छीजे॥

(8)

यह तन सात कुधातमई है, देखत ही घिन आवै।
चर्म-लपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्टा पावै॥
अतिदुर्गन्ध अपावन सों यह, मूरख प्रीति बढ़ावै।
देह विनाशी, यह अविनाशी नित्य स्वरूप कहावै॥

(9)

यह तन जीर्ण कुटी सम आतम! यातैं प्रीति न कीजै।
नूतन महल मिलै जब भाई, तब यामें क्या छीजै॥
मृत्यु भयेतें हानि कौन है, याको भय मत लावो।
समता से जो देह तजोगे, तो शुभ तन तुम पावो॥

(10)

मृत्यु-मित्र उपकारी तेरो, इस अवसर के माँहीं।
जीरन तनसे देत नयो यह, या सम साहू नाहीं॥
या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजै।
क्लेश भाव को त्याग सयाने, समता भाव धरीजै॥

(11)

जो तुम पूरव पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई।
मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावै, स्वर्ग-सम्पदा भाई॥

राग-द्वेष को छोड़ सयाने, सात व्यसन दुखदाई।
अन्त समयमें समता धारो, परभव पंथ सहाई॥

(12)

कर्म महा दुठ बैरी मेरो, तासेती दुख पावै।
तन पिंजरे में बन्ध कियो मोहि, यासों कौन छुड़ावै॥
भूख तृषा दुख आदि अनेकन, इस ही तन में गाढ़े।
मृत्युराज अब आय दया कर, तन पिंजरे से काढ़े॥

(13)

नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तन को पहिराये।
गन्ध-सुगन्धित अतर लगाये, षट्रस अशन कराये॥
रात-दिना मैं दास होय कर, सेव करी तन केरी।
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रह्यो निधि मेरी॥

(14)

मृत्युराज को शरण पाय, तन नूतन ऐसो पाऊँ।
जामें सम्यक् रतन तीन लहि, आठों कर्म खपाऊँ॥
देखो तन सम और कृतघ्नी, नाहिं सु या जगमाँहीं।
मृत्यु-समय में ये ही परिजन, सब ही हैं दुखदाई॥

(15)

यह सब मोह बढ़ावनहारे, जियको दुर्गति-दाता।
इनसे ममत निवारो जियरा, जो चाहो सुख-साता॥
मृत्यु कल्पद्रुम पाय सयाने, माँगो इच्छा जेती।
समता धरकर मृत्यु करौ तो, पावो सम्पति तेती॥

(16)

चौ-आराधन सहित प्राण तज, तौ ये पदवी पावो।
हरि, प्रतिहरि, चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्ग, मुकति में जावो॥
मृत्यु-कल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मँझारे।
ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे॥

(17)

इस तन में क्या राचे जियरा, दिन-दिन जीरन हो है।
तेज, कान्ति, बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है॥
पाँचों इन्द्री शिथिल भई अब, स्वास शुद्ध नहिं आवै।
ता पर भी ममता नहिं छोड़े, समता उर नहिं लावै॥

(18)

मृत्युराज उपकारी जियको, तनसों तोहि छुड़ावै।
नातर या तन बन्दीगृह में, पर-च्यो-पर-च्यो बिललावै॥
पुद्गल के परमाणु मिलके, पिण्डरूप तन भासी।
यही मूरती मैं अमूरती, ज्ञान - जोति गुण रासी॥

(19)

रोग-शोक आदिक जो वेदन, ते सब पुद्गल लारे।
मैं तो चेतन व्याधि बिना नित, है सो भाव हमारे॥
या तनसे इस क्षेत्र सम्बन्धी, कारण आन बनो है।
खानपान दे याको पोषो, अब समभाव ठनो है॥

(20)

मिथ्यादर्शन आत्म-ज्ञान-बिन, यह तन अपनो जानो।
इन्द्रीभोग गिने सुख मैंने, आपो नाहिं पिछानो॥
तन विनशनतैं नाश जानि निज, यह अयान दुखदाई।
कुटुम्ब आदिको अपनो जानो, भूल अनादी छाई॥

(21)

अब निज भेद यथारथ समझो, मैं हूँ ज्योतिस्वरूपी।
उपजै विनसै सो यह पुद्गल, जानो याको रूपी॥
इष्ट-अनिष्ट जेते सुख दुख हैं, सो सब पुद्गल सागे।
मैं जब अपनो रूप विचारो, तब वे सब दुख भागे॥

(22)

बिन समता तन नंत धरे मैं, तिनमें ये दुख पायो।
शस्त्र घाततैं नन्त बार मर, नाना योनि भ्रमायो॥

बार नन्त ही अग्नि माँहिं जर, मूवो सुमति न लायो।
सिंह व्याघ्र अहि नन्त बार मुझ, नाना दुःख दिखायो॥

(23)

बिन समाधि ये दुःख लहे मैं, अब उर समता आई।
मृत्युराज को भय नहिं मानों, देवै तन सुखदाई॥
यातैं जब लग मृत्यु न आवै, तब लग जप-तप कीजै।
जप-तप बिन इस जग के माँहीं, कोई भी ना सीजै॥

(24)

स्वर्ग-सम्पदा तपसे पावै, तप से कर्म नशावै।
तप ही सों शिव-कामिनि-पति ह्वै, यासों तप चित लावै॥
अब मैं जानी समता बिन मुझ, कोऊ नाहि सहाई।
मात, पिता, सुत, बाँधव, तिरिया, ये सब हैं दुखदाई॥

(25)

मृत्यु समय में मोह करें, ये तातें आरत हो है।
आरत तैं गति नीची पावै, यों लख मोह तजो है॥
और परिग्रह जेते जग में तिनसों प्रीत न कीजै।
परभव में ये संग न चालैं, नाहक आरत कीजै॥

(26)

जे-जे वस्तु लखत हैं ते पर, तिनसों नेह निवारो।
परगति में ये साथ न चालैं, ऐसो भाव विचारो॥
परभव में जो संग चलैं तुझ, तिन सों प्रीत सु कीजे।
पञ्च पाप तज समता धारो, दान चार विध दीजे॥

(27)

दश-लक्षणमय धर्म धरो उर, अनुकम्पा चित लावो।
षोडशकारण नित्य चिन्तवो, द्वादश भावन भावो॥
चारों परवी प्रोषध कीजे, अशन रात को त्यागो।
समता धर दुर्भाव निवारो, संयमसों अनुरागो॥

(28)

अन्त समय में ये शुभ भावहिं, होवैं आनि सहाई।
स्वर्ग-मोक्ष फल तोहि दिखावैं, ऋद्धि देहिं अधिकाई॥
खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उर में समता लाके।
जासेती गति चार दूर कर, बसो मोक्षपुर जाके॥

(29)

मन थिरता करके तुम चिन्तौ, चौ-आराधन भाई।
ये ही तोकों सुख की दाता, और हितु कोउ नाहीं॥
आगैं बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी।
बहु उपसर्ग सहे शुभ भावन, आराधन उर धारी॥

(30)

तिनमें कछु इक नाम कहूँ मैं, सो सुन जिय चित लाके।
भाव सहित अनुमोदै तासें, दुर्गति होय न जाके॥
अरु समता निज उर में आवै, भाव अधीरज जावै।
यों निशदिन जो उन मुनिवर को, ध्यान हिये विच लावै॥

(31)

धन्य-धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी।
एक श्यालनी जुग बच्चा जुत, पाँव भखो दुखकारी॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥

(32)

धन्य-धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्री ने तन खायो।
तो भी श्री मुनि नेक डिगे नहिं, आतम सों हित लायो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥

(33)

देखो गजमुनिके शिर ऊपर, विप्र अगिनि बहु बारी।
शीश जले जिम लकड़ी तिनको, तौ भी नाहिं चिगारी॥

यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥

(34)

सनतकुमार मुनीके तनमें, कुष्ठ वेदना व्यापी।
छिन्न-भिन्न तन तासों हूवो, तब चिंतो गुण आपी॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥

(35)

श्रेणिक सुत गंगा में डूबो, तब जिन नाम चितारो।
धर सल्लेखना परिग्रह छाँड़ो, शुद्ध भाव उर धारो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥

(36)

समन्तभद्र मुनिवर के तन में, क्षुधा वेदना आई।
ता दुखमें मुनि नेक न डिगियो, चिन्तो निज गुण भाई॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥

(37)

ललित घटादिक तीस दोय मुनि, कौशाम्बी तट जानो।
नद्दी में मुनि बहकर मूवे, सो दुख उन नहिं मानो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥

(38)

धर्मघोष मुनि चम्पानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाड़ो।
एक मास की कर मर्यादा, तृषा दुःख सह गाढ़ो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥

श्रीदत मुनि को पूर्व जन्म को, बैरी देव सु आके।
विक्रय कर दुःख शीत तनो सो, सह्यो साध मन लाके॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥

(39)

वृषभसेन मुनि उष्णशिला पर, ध्यान धरो मन लाई।
सूर्य घाम अरु उष्ण पवन की, वेदन सहि अधिकाई॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥

(40)

अभयघोष मुनि काकन्दीपुर, महा वेदना पाई।
बैरी चण्डने सब तन छेदे, दुख दीनो अधिकाई॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥

(41)

विद्युतवर ने बहु दुख पायो, तौ भी धीर न त्यागी।
शुभ भावन सों प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥

(42)

पुत्र चिलाती नामा मुनि को, बैरी ने तन घातो।
मोटे-मोटे कीट पड़े तन, तापर निज गुण रातो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥

(43)

दण्डक नामा मुनि की देही, बाणन कर अरि भेदी।
तापर नेक डिगे नहिं वे मुनि, कर्म महारिपु छेदी॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥

(44)

अभिनन्दन मुनि आदि पाँचसै, घानी पेलि जु मारे।
तौ भी श्रीमुनि समताधारी, पूरब कर्म विचारे॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥

(45)

चाणक मुनि गोघर के माँहीं, मूँद अगिनि पर जालो।
श्रीगुरु उर समभाव धारके, अपनो रूप सम्हालो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥

(46)

सात शतक मुनिवर ने पायो, हथनापुर में जानो।
बलि ब्राह्मणकृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥

(47)

लोहमयी आभूषण गढ़के, ताते कर पहिराये।
पाँचों पाण्डव मुनि के तन में, तौ भी नाहिं चिगाये॥
यह उपसर्ग सह्यो धर थिरता, आराधन चितधारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है? मृत्यु महोत्सव बारी॥

(48)

और अनेक भये इस जगमें, समता-रस के स्वादी।
वे ही हमको हों सुखदाता, हर हैं टेव प्रमादी॥
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन-तप, ये आराधन चारों।
ये ही मोंको सुख की दाता, इन्हें सदा उर धारों॥

(49)

यों समाधि उर माँहीं लावो, अपनो हित जो चाहो।
तज ममता अरु आठों मद को, जोति स्वरूपी ध्यावो॥

जो कोई नित करत पयानो, ग्रामान्तर के काजै।
सो भी शकुन विचारै नीके, शुभ-शुभ कारण साजै॥

(50)

मात-पितादिक सर्व कुटुम्ब सो, नीके शकुन बनावै।
हलदी, धनिया, पुङ्गी, अक्षत, दूध, दही, फल लावै॥
एक ग्राम के कारण एते, करैं शुभाशुभ सारे।
जब परगति को करत पयानो, तब नहिं सोचो प्यारे॥

(51)

सर्व कुटुम्ब जब रोवन लागै, तोहि रुलावैं सारे।
ये अपशकुन करैं सुन तोकों, तूँ यों क्यों न विचारे॥
अब परगति को चालत विरियाँ, धर्म ध्यान उर आनो।
चारों आराधन अराधो, मोह तनों दुख आनो॥

(52)

ह्वै निःशल्य तजो सब दुविधा, आतमराम सुध्यावो।
जब परगति को करहु पयानो, परम-तत्त्व उर लावो॥
मोह-जाल को काट पियारे, अपनो रूप विचारो।
मृत्यु-मित्र उपकारी तेरो, यों उर निश्चय धारो॥

दोहा

मृत्यु महोत्सव पाठ को, पढ़ो सुनो बुधिवान्।
सरधा धर नित सुख लहो, सूरचन्द्र शिवथान॥

पञ्च उभय नव एक नभ, संवत् सो सुखदाय।
आश्विन श्यामा सप्तमी, कह्यो पाठ मन लाय॥

4. आराधना

मैं देव नित अरहंत चाहूँ, सिद्ध का सुमिरन करौं।
मैं सुर गुरुमुनि तीन पद ये, साधु पद हिरदय धरौं॥
मैं धर्म करुणामय जु चाहूँ, जहाँ हिंसा रंच ना।
मैं शास्त्र ज्ञान विराग चाहूँ, जासु में परपंच ना॥
चौबीस श्री जिनदेव चाहूँ, और देव न मन बसैं।
जिन बीस क्षेत्र विदेह चाहूँ, वंदिते पातक नसैं॥
गिरनार शिखर सम्मेद चाहूँ, चम्पापुरी पावापुरी।
कैलाश श्री जिनधाम चाहूँ, भजत भाजैं भ्रम जुरी॥
नव तत्त्व का सरधान चाहूँ, और तत्त्व न मन धरौं।
षट् द्रव्य गुण परजाय चाहूँ, ठीक तासौं भय हरौं॥
पूजा परम जिनराज चाहूँ, और देव न चाहूँ कदा।
तिहुँ काल की मैं जाप चाहूँ, पाप नहिं लागे कदा॥
सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र, सदा चाहूँ भाव सों।
दशलक्षणी मैं धर्म चाहूँ, महा हर्ष उछाव सों॥
सोलह जु कारण दुख निवारण, सदा चाहूँ प्रीति सों।
मैं नित अठाई पर्व चाहूँ, महामंगल रीति सों॥
अनुयोग चारों सदा चाहूँ, आदि अन्त निवाह सों।
पाये धरम के चार चाहूँ, अधिक चित्त उछाह सों॥
मैं दान चारों सदा चाहूँ, भुवनवशि लाहो लहूँ।
आराधना मैं चार चाहूँ, अन्त में ये ही गहूँ॥
भावना बारह जु भाऊँ, भाव निरमल होत हैं।
मैं व्रत जु बारह सदा चाहूँ, त्याग भाव उद्योत हैं॥
प्रतिमा दिगम्बर सदा चाहूँ, ध्यान आसन सोहना।
वसुकर्म तैं मैं छुटा चाहूँ, शिव लहूँ जहँ मोहना॥
मैं साधुजन को संग चाहूँ, प्रीति तिनही सों करौं।
मैं पर्व के उपवास चाहूँ, आरम्भ मैं सब परिहरौं॥
इस दुखद पंचमकाल माहीं, सुकुल श्रावक मैं लह्यो।

अरु महाव्रत धरि सकौं नाहीं, निबल तन मैंने गह्यो॥
आराधना उत्तम सदा चाहूँ, सुनो जिनराय जी।
तुम कृपानाथ अनाथ ह्यानत, दया करना न्याय जी॥
वसुकर्म नाश विकास, ज्ञान प्रकाश मुझको दीजिये।
करि सुगति गमन समाधिमरन, सुभक्ति चरनन दीजिये॥

5. इष्ट प्रार्थना

हमारे कष्ट मिट जाये, नहीं यह भावना स्वामी।
डरे न संकटों से हम, यही है भावना स्वामी॥ 1॥
हमारा भार घट जाये, नहीं यह भावना स्वामी।
किसी पर भार न हों हम, यही है भावना स्वामी॥ 2॥
फले आशा सभी मन की, नहीं यह भावना स्वामी।
निराशा हो न अपने से, यही है भावना स्वामी॥ 3॥
बढ़े धन सम्पदा भारी, नहीं यह भावना स्वामी।
रहे संतोष थोड़े में, यही है भावना स्वामी॥ 4॥
दुःखों में साथ दे कोई, नहीं यह भावना स्वामी।
बने सक्षम स्वयं ही हम, यही है भावना स्वामी॥ 5॥
दुःखीं हो दुष्ट जन सारे, नहीं यह भावना स्वामी।
सभी दुर्जन बने सज्जन, यही है भावना स्वामी॥ 6॥
मनोरंजन हमारा हो, नहीं यह भावना स्वामी।
मनोभंजन हमारा हो, यही है भावना स्वामी॥ 7॥
रहे सुख शान्ति जीवन में, नहीं यह भावना स्वामी।
न जीवन में असंयम हो, यही है भावना स्वामी॥ 8॥
फले फूले नहीं कोई, नहीं यह भावना स्वामी।
सभी पर प्रेम हो उर में, यही है भावना स्वामी॥ 9॥
दुखों में आपको ध्यायें, नहीं यह भावना स्वामी।
कभी न आपको भूलें, यही है भावना स्वामी॥10॥

6. जब प्राण तन से निकलें

ऐसा समय हो भगवन्, जब प्राण तन से निकलें।
नवकार जपते-जपते, मम प्राण तन से निकलें॥ टेक॥

ये क्रोध मान माया, अरु लोभ जो बताया।
चारों कषायें छूटें, जब प्राण तन से निकलें॥
ऐसा समय.....॥

नहीं बैर हो किसी से, सम भाव होय सबसे।
शांति क्षमा हो मन में, जब प्राण तन से निकलें॥
ऐसा समय.....॥

ये कर्म जो दुखेरे, लागें हैं संग मेरे।
इनसे मैं मुक्त होऊँ, जब प्राण तन से निकलें॥
ऐसा समय.....॥

होवे मरण समाधी, व्यापे न मोह व्याधी।
घट में हो ध्यान मेरा, जब प्राण तन से निकलें॥
ऐसा समय.....॥

वस्तु स्वरूप निरखूँ, प्रभु!आत्म गुण निहारूँ।
निज में हो ध्यान मेरा, जब प्राण तन से निकलें॥
ऐसा समय.....॥

भक्ती में रत हूँ तेरी, शुद्धात्मा हो मेरी।
प्रभु नाम भजते-भजते, मम प्राण तन से निकलें॥
ऐसा समय.....॥

कर जोड़ अर्ज मेरी, काटो करम की बेड़ी।
सम्यक्त्व होय पैदा, जब प्राण तन से निकलें॥
ऐसा समय.....॥

मैंने जो जो पाप किये हैं, प्रभुवर माफ करो।
खड़ा अदालत में हूँ स्वामी! अब इंसाफ करो॥
ऐसा समय.....॥

7. समाधि-भक्ति

तेरी छत्रच्छाया भगवन्! मेरे शिर पर हो।
मेरा अन्तिम मरणसमाधि, तेरे दर पर हो॥

जिनवाणी रसपान करूँ मैं, जिनवर को ध्याऊँ।
आर्यजनों की संगति पाऊँ, व्रत-संयम चाहूँ ॥
गुणीजनों के सद्गुण गाऊँ, जिनवर यह वर दो।
मेरा अन्तिम मरणसमाधि, तेरे दर पर हो॥ 1॥
तेरी.....॥
परनिन्दा न मुँह से निकले, मधुर वचन बोलूँ।
हृदय तराजू पर हितकारी, सम्भाषण तौलूँ॥
आत्म-तत्त्व की रहे भावना, भाव विमल भर दो।
मेरा अन्तिम मरणसमाधि, तेरे दर पर हो ॥ 2॥
तेरी.....॥
जिनशासन में प्रीति बढ़ाऊँ, मिथ्यापथ छोड़ूँ ।
निष्कलंक चैतन्य भावना, जिनमत से जोड़ूँ ॥
जन्म-जन्म में जैनधर्म, यह मिले कृपा कर दो।
मेरा अन्तिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥ 3॥
तेरी.....॥
मरण समय गुरु, पाद-मूल हो सन्त समूह रहे।
जिनालयों में जिनवाणी की, गंगा नित्य बहे॥
भव-भव में संन्यास मरण हो, नाथ हाथ धर दो।
मेरा अन्तिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥ 4॥
तेरी.....॥
बाल्यकाल से अब तक मैंने, जो सेवा की हो।
देना चाहो प्रभो! आप तो, बस इतना फल दो॥

श्वांस-श्वांस, अन्तिम श्वांसों में, णमोकार भर दो।
मेरा अन्तिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥ 5॥
तेरी.....॥
विषय कषायों को मैं त्यागूँ, तजूँ परिग्रह को।
मोक्षमार्ग पर बढ़ता जाऊँ, नाथ अनुग्रह हो॥
तन पिंजर से मुझे निकालो, सिद्धालय घर दो।
मेरा अन्तिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥ 6॥
तेरी.....॥
भद्रबाहु सम गुरु हमारे, हमें भद्रता दो।
रत्नत्रय संयम की शुचिता, हृदय सरलता दो॥
चन्द्रगुप्त सी गुरु सेवा का, पाठ हृदय भर दो।
मेरा अन्तिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥ 7॥
तेरी.....॥
अशुभ न सोचूँ, अशुभ न चाहूँ, अशुभ नहीं देखूँ।
अशुभ सुनूँ ना, अशुभ कहूँ ना, अशुभ नहीं लेखूँ॥
शुभ चर्या हो, शुभ क्रिया हो, शुद्ध भाव भर दो।
मेरा अन्तिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥ 8॥
तेरी.....॥
तेरे चरण कमल द्वय, जिनवर! रहे हृदय मेरे।
मेरा हृदय रहे सदा ही, चरणों में तेरे॥
पण्डित-पण्डित मरण हो मेरा, ऐसा अवसर दो।
मेरा अन्तिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥ 9॥
तेरी.....॥
मैंने जो जो पाप किए हों, वह सब माफ करो।
खड़ा अदालत में हूँ स्वामी, अब इंसाफ करो॥
मेरे अपराधों को गुरुवर, आज क्षमा कर दो।
मेरा अन्तिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥ 10॥
तेरी.....॥

दुःख नाश हो, कर्म नाश हो, बोधि–लाभ वर दो।
जिन गुण से प्रभु आप भरे हो, वह मुझमें भर दो॥
यही प्रार्थना, यही भावना, पूर्ण आप कर दो।
मेरा अन्तिम मरण समाधि, तेरे दर पर हो॥ 11॥
तेरी.....॥

तेरी छत्रच्छाया भगवन्! मेरे शिर पर हो।
मेरा अन्तिम मरणसमाधि, तेरे दर पर हो॥

8. समाधि भाषा

इतना तो कर दो स्वामी, जब प्राण तन से निकले।
होवे समाधि पूरी, जब प्राण तन से निकले॥
माता – पितादि जितने, हैं ये कुटुम्ब सारे [2]
उनसे ममत्व छूटे, जब प्राण तन से निकले॥
इतना तो .....
बैरी बहुत से मेरे, होवेंगे इस जगत् में [2]
उनसे क्षमा करा लूँ, जब प्राण तन से निकले॥
इतना तो .....
परिग्रह का जाल मुझपर, फैला बहुत है स्वामी[2]
उनसे ममत्व छूटे, जब प्राण तन से निकले॥
इतना तो .....
दुष्कर्म दुःख दिखावे या रोग मुझको घेरे[2]
प्रभु का न ध्यान छूटे, जब प्राण तन से निकले॥
इतना तो .....
इच्छा क्षुधा तृषा की, होवे जो उस घड़ी में[2]
उसका भी त्याग कर दूँ, जब प्राण तन से निकले॥
इतना तो .....
हे नाथ अर्ज करता, विनती पे ध्यान दीजे[2]
होवे सफल मनोरथ, जब प्राण तन से निकले॥
इतना तो .....

9. अमूल्य तत्त्व विचार

बहु पुण्य पुँज प्रसंग से, शुभ देह मानव का मिला।
तो भी अरे भव चक्र का, फेरा न एक कभी टला॥

सुख प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते, सुक्ख जाता दूर है।
तू क्यों भयंकर भाव मरण, प्रवाह में चकचूर है॥

लक्ष्मी बढ़ी अधिकार भी, पर बढ़ गया क्या बोलिये।
परिवार और कुटुम्ब है क्या, वृद्धि कुछ नहीं मानिये॥

संसार का बढ़ना अरे! नरदेह की यह हार है।
नहीं एक क्षण तुझको अरे! इसका विवेक विचार है॥

निर्दोष सुख निर्दोष आनंद, लो जहाँ भी प्राप्त हो।
वह दिव्य अंतः तत्त्व जिससे, बंधनों से मुक्त हो॥

परवस्तु में मूर्छित न हो, इसकी रहे मुझको दया।
वह सुख सदा ही त्याज्य रे,पश्चात् जिसके दुःख भरा॥

मैं कौन हूँ आया कहाँ से! और मेरा रूप क्या।
संबंध दुखमय कौन है? स्वीकृत करूं परिहार क्या ?

इसका विचार विवेक पूर्वक, शान्त होकर कीजिये।
तो सर्व आत्मिक ज्ञान के, सिद्धान्त का रस पीजिये॥

जिसका वचन उस तत्त्व की, उपलब्धि में शिवभूत है।
निर्दोष नर का वचन रे, वह स्वानुभूति प्रसूत है॥

तारो अहो तारो निजात्मा, शीघ्र अनुभव कीजिये।
सर्वात्म में समदृष्टि दो यह, वच हृदय लख लीजिये॥

10. आत्म स्वरूप चिंतन

- शुद्धोऽहं।
- बुद्धोऽहं।
- निरंजनोऽहं।
- प्रशांतोऽहं।
- आनंद स्वरूपोऽहं।
- नित्यानंद स्वरूपोऽहं।
- अनंतस्वरूपोऽहं।
- शल्यत्रय रहितोऽहं।
- केवलज्ञान स्वरूपोऽहं।
- भावकर्मरहितोऽहं।
- अनंतज्ञान स्वरूपोऽहं।
- स्पर्श-रस-गंध-वर्ण रहितोऽहं।
- मिथ्यात्व रहितोऽहं।
- सोऽहं सोऽहं सोऽहं।